सफल जीवन

(भगवद्गीता के प्रकाश में)

अतः तेरे लिए कर्त्तव्य - अकर्त्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू इस लोक में शास्त्रविधि से नियत कर्त्तव्य - कर्म करने योग्य है। अर्थात् तुझे शास्त्रविधि के अनुसार कर्त्तव्य - कर्म करने चाहिए। **–गीता 16:24**

जो मनुष्य शास्त्रविधि को छोड़कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को, न सुख (शान्ति) को और न परमगति को ही प्राप्त होता है।
–गीता 16:23

रचयिता
जहूरुल्लाह

अनुवादक
जाकिर

Book Title : **Saphal Jeevan** (Hindi)
Bhagavat Gita Choope Jeevana Vidhanam
(Telugu)

Author : **Md. Zahoorullah**
Translator : **Zakir** Hindi Pandit

Copyright : All rights reserved by the author

For all Judicial disputes : Subject to Kakinada Jurisdiction only

First Edition : Agust 2013 Copies: 2000

Price : Rs. 50/-

Published by : Md. Zahoorullah
16-33-45/b Dolphin's Colony
Sambamurthy Nagar
Kakinada - 533003 A. P. India

Contact No : **9494660339, 9848613772, 9848516362**

Websites : www.tmcpeace.com

e-mail : mailtozahoorullah@radiff.com

Printed at :

परिचय

हम सब भारतीय बहुत खुशनसीब हैं कि हमें गीताशास्त्र जैसा एक महान ग्रंथ प्राप्त हुआ है। लोग कहते हैं कि इसका अवतरण **5000** वर्ष पूर्व हुआ है। इसको सच मानने में कोई गलती नहीं है। परन्तु गलती तो तब हुई जब पंडितों ने ऐसे महान ग्रंथ को सामान्य जनता से दूर रखा था। इसका कारण है सांसारिक लाभों को प्राप्त करने का स्वार्थ। इसी कारण आज समस्त भारतजाति की दुर्भर स्थिति बनी हुई है। यहाँ पर न तो इहलोक तथा परलोक की सफलता है और न ही मुक्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति। कमसे कम अब तो इस बुरी दशा से जागकर हर घर में अगर गीताशास्त्र का पारायण किया जाएगा तो मेरा अटल विश्वास है कि दानव समान बना हुआ मानव भी देवता बन जाएगा। पारायण से मतलब है कि हर दिन उसको पढना, समझना और उसके अनुसार आचरण करना।

धार्मिक ग्रंथों में दो मूल अंशों का आदेश दिया जाता है।

1. किए जाने वाले कार्य- ''सकर्म'' और

2. मना किए गए कार्य- ''विकर्म''।

गीताशास्त्र में बताए गए इन दोनों अंशों से संबंधित कुछ श्लोकों का विवरण ही यह पुस्तक है। इसके लेखक श्री जहूरुल्ला ने अपने निजी भावों की अपेक्षा गीताशास्त्र के श्लोकों का वर्णन निष्पक्षता से किया है। इस किताब की रचना शैली इतनी मधुर है कि इसके आधार पर पाठक गीताशास्त्र में बताए गए ''सकर्म'' और ''विकर्मों'' को आसानी से समझकर उनके अनुसरण द्वारा इहलोक तथा परलोक की सफलता को प्राप्त कर सकते हैं। इस किताब के लेखक श्री जहूरुल्ला को मैं हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि भगवान उनको इस प्रकार की अनेक रचनाएँ करते हुए लोगों को सन्मार्ग पर चलाने की शक्ति प्रदान करें।

अह्मद अली
निर्देशक
सत्य संदेश केन्द्र
काकिनाडा

कुरान के अनुसार परमात्मा का अवतरण वास्तव ही है

समस्त मानव जाति को उसके आरंभ से ही एकेश्वर द्वारा एक ही धर्म प्रदान किया गया है। उस धर्म का अनुसरण करने वाले ही इहलोक में सुख और शान्ति तथा परलोक में मुक्ति या मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। इतने महत्वपूर्ण ''सत्य धर्म'' में मिलावट करके कुछ पंडितों ने अपने स्वार्थ के लिए उसमें उतार-चढाव किए हैं। ऐसे बनावटी धर्म के आचरण से ही लोगों में शांन्ति के बदले अशान्ति, नीति के स्थान अनीति और एकता की जगह अनेकता जैसे अनिष्टकारी विषय फैल रहे हैं। मृत्यु के बाद तो ऐसे नकली धर्म का अनुसरण करने वालों का स्थान नरक ही होगा। इस प्रकार जब भी मानव जाति के लिए इह-पर लोकों की दुर्दशा बनी हुई हो तब भगवान ने अपने एक विशेष दूत के द्वारा मिलावटी धर्म को स्वच्छ तथा सत्य धर्म से भर्ती किया है। यही विषय गीताशास्त्र के निम्न श्लोकों में स्पष्ट किया गया है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्र्।। -गीता 4:7

हे भरतवंशी अर्जुन, जब-जब धर्म की हानि (और) अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने-आपको प्रकट करता हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। -गीता 4:8

साधुओं (भक्तों) की रक्षा करने के लिए, पापकर्म करनेवालों का विनाश करने के लिए और धर्म की भलीभाँति स्थापना करने के लिए (मैं) युग-युग में प्रकट हुआ करता हूँ।

गीताशास्त्र में जहाँ पर भगवान को ''अव्यक्त'' और ''अचल'' बताया गया है, वही पर उसको अगर ''व्यक्त'' या ''अवतरित होनेवाला'' कहा जाय तो ये दोनें विषय परस्पर विरुद्ध ही होंगे ना! इस लिए उपर्युक्त श्लोकों में बताए गए अवतरित होने वाला अस्तित्व ईश्वर का नहीं बल्कि उनके यहाँ रहने वाले परमात्मा का है। उन्हीं

परमात्मा को बाईबल में गाब्रियेल और कुरान के अनुसार जिब्रईल कहा गया है। ईश्वर ने इनके द्वारा ही संसार भर में अपने धर्म का प्रचलन करवाया है।

हिन्दुस्तान तक ईश्वर के धर्म को पहुँचाने वाले परमात्मा ही स्वयं हजरत मुहम्मद पर भी अवतरित हए और इस हिन्दू वैदिक धर्म को ही अरबी में इस्लाम के नाम से उनके सामने प्रस्तुत किया। इसी लिए कुरान के निम्न वाक्यों में कहा गया है कि-

यह सारे जहानों के रब की उतारी हुई चीज है। इसे लेकर तेरे (मुहम्मद) दिल पर अमानतदार रूह (जिब्रईल) उतरी है ताकि तू उन लोगों में शामिल हो जो सचेत करने वाले हैं, साफ साफ अरबी भाषा में... -कुरान 26:192-195

उपर्युक्त वाक्यों से स्पष्ट होता है कि आत्मा का अवतरण हजरत मुहम्मद पर भी हुआ था। इन वाक्यों के पीछे एक और बात कही गयी है जिस पर हमें ध्यान देना चाहिए।

अगले लोगों की किताबों में भी यह मौजूद है -कुरान 26:196

''यह मौजूद है''- अर्थात् कुरान में यह कहा गया है कि आत्मा के अवतरण का विषय पहले के ग्रंथों में भी उपलब्ध है। कुरान भी एक सत्य ग्रंथ है। इसी लिए इसकी घोषणा के अनुसार हम गीताशास्त्र और बाईबल में भी परमात्मा के अवतरण को देख सकते हैं। इस लिए हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई पण्डितों से मेरी विनती है कि वे इन विषयों के आधार पर अपने-अपने वार्गों के बीच एकता बनाए रखने का प्रयास करें। इसी प्रयास में इस किताब की रचना करने वाले मेरे आदरणीय साथी श्री जहूरुल्ला को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

मुष्ताख अह्मद (अभिलाष)
मुख्य आयोजक
सत्य संदेश केन्द्र
काकिनाडा

विषय सूचि

1.	सामाजिक परिस्थितियाँ	1
2.	शास्त्र का परिचय	3
3.	शास्त्रविधि	13
4.	सृष्टिकर्ता का परिचय	19
5.	ईश्वर के गुण	25
6.	समर्पण किसे और क्यों?	42
7.	मनुष्यों से ईश्वर का सम्बन्ध	44
8.	ईश्वर की आराधना से होने वाले इह-पर लोकों के लाभ	46
9.	ईश्वर को छोडने से..?	51
10.	कर्म और फल	54
11.	स्थिर ज्ञान	59
12.	पैगम्बरी	61
13.	तिरस्कार और परिणाम	64
14.	मोक्ष	66
15.	शास्त्र की शिक्षा	69
16.	हमारा कर्त्तव्य	73
17.	श्री कृष्ण के जीवन में से किस अंश को आदर्श बनाएँ?	74

सर्व सृष्टिकर्ता सर्वेश्वरके नाम से

धर्म से मतलब?

तीन भाग

1. विश्वास (ईमान)

एकेश्वर (भगवान) के प्रति, परमात्मा के प्रति, देवताओं के प्रति, भगवान द्वारा भेजे गए पैगंबरों (ऋषियों) के प्रति, धर्म - शास्त्रों के प्रति और मृत्यु के बाद होने वाले जीवन के प्रति विश्वास रखना चाहिए।

2. आराधनाएँ (इबादतें)

एकेश्वर के प्रति भक्ति रखना तथा उनकीं आराधना करना, उन्हीं को प्रणाम करना, उनकी आज्ञा के अनुसार उपवास रखना तथा उनके द्वारा दिए गए धन को गरीबों की सहायता के लिए खर्च करना आदि।

3. व्यवहार

माता-पिता, बन्धुगण तथा गुरुजनों का आदर करना, गरीबों पर दया तथा अन्य सभी मनुष्यों के प्रति स्नेह रखना।

सामाजिक परिस्थितियाँ

एक परिशीलन

शास्त्र उसी को कहते हैं जिसका तर्कसम्मत परिशीलन करके आचरण किया जाता है। अंग्रेजी में शास्त्र को **(SCIENCE)** कहा जाता है जिसका अर्थ है ''ज्ञान''। गणित शास्त्र में गणित से सम्बन्धित विषय होते हैं तथा सॉंघिक शास्त्र में समाज के विभिन्न वर्गों की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन देखने को मिलता है। ऐसे ही विभिन्न शास्त्रों में उन शास्त्रों से सम्बन्धित विभिन्न विषयों का परिशीलन होने के कारण ही उन्हें शास्त्र कहा जाता है। मानव जाति की उन्नति तथा प्रगति में सहायक बनने वाले इस प्रकार के अनेक शास्त्रों की खोज करके मनुष्य सफलता की सीढियाँ चढता गया। परन्तु अब सवाल यह उठता है कि हर वस्तु की दिशा को निर्धारित करने वाले इस मनुष्य ने अपने जीवन-लक्ष्य तथा परमार्थ को बताने वाले शास्त्र की जानकारी कहाँ तक प्राप्त की है?

किसी वस्तु या घटना की जानकारी देते हुए उसके लाभ तथा हानियों को बताने वाला शास्त्र कौन बनाता है? उस वस्तु का निर्माता ही ना! इसी प्रकार मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित नियमों को भी उसे बनाने वाला ब्रह्मा ही बना सकता है। विभिन्न प्रान्तों के मनुष्यों के लिए उनकी बोलचाल की भाषा में ही भगवान ने शास्त्रों को अवतरित किया है। प्राचीन भारत में बोलचाल की भाषा संस्कृत थी इसी लिए वेद, उपनिषद तथा भगवद्गीता शास्त्र संस्कृत भाषा में ही अवतरित किए गए हैं।

हम जिस समाज में जीवन बिता रहे हैं उस समाज की स्थिति को समझना हमारे लिए अत्यंत आवश्यक है। आध्यात्मिकता और नैतिकता की दृष्टि से भारतीय समाज उच्च शिखर पर था। उस समय भी भारतीय संस्कृति सर्वोच्च स्थान पर थी जब पाश्चात्य देशों को संस्कृति तथा नागरिकता की जानकारी तक नहीं थी। परन्तु वह महान इतिहास आज सिर्फ एक बीता हुआ कल बन गया है। उस समय के संस्कार और आज की परिस्थितियों में जमीन और आसमान का अंतर दिखाई दे रहा है। भारतीय समाज की ऐसी दुर्गति क्यों बन गई है? उस समय की एकता तथा नैतिकता कहाँ चली गई हैं?

आजकल के जुर्म तथा अपराधों की कितनी भी कहानियाँ लिखें खतम नहीं होंगी। समाज से बुराइयों को दूर करने की बहुत सारी कोशिशें भी की गईं। कानून तथा नियम बनाए गए। अनेक प्रकार के आन्दोलन चलाए गए। परन्तु जब भी इन बुराइयों को रोकने की कोशिश की गई, वे बढते ही गए। बनावटी कानून से अस्थाई परिवर्तन तो आते रहे परन्तु पूर्ण सुधार नहीं हो सका। सामाजिक सुधार का कार्य केवल धार्मिक शास्त्रों के अनुसरण से ही पूर्ण बन सकता है। प्राचीन भारत का महान इतिहास गीताशास्त्र में बताए गए सामाजिक मूल्यों के अनुसरण से ही बना था। आज जब वही गीताशास्त्र हमारे बीच मौजूद है तो क्या उसके अध्ययन तथा अनुसरण के द्वारा उन सामाजिक मूल्यों को पुनः स्थापित करना संभव होगा? अवश्य होगा। उसके लिए हम सब को यह कोशिश करनी चाहिए कि हम गीता शास्त्र का अर्थ समझते हुए उसका अध्ययन करें और उसके अनुसार आचरण करते हुए उसका प्रचार भी करें।

शास्त्र का परिचय

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्या कार्य व्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तु मिहार्हसि।। **-16:24**

अतः तेरे लिए कर्त्तव्य - अकर्त्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू इस लोक में शास्त्रविधि से नियत कर्त्तव्य - कर्म करने योग्य है। अर्थात् तुझे शास्त्रविधि के अनुसार कर्त्तव्य - कर्म करने चाहिए।

जिस व्यक्ति के अंदर असली धार्मिकता हो उसमें भगवान का डर भी होना चाहिए। अगर उसको कोई काम करना हो या छोडना हो तो अपनी मनोकामनाएँ या किसी और की इच्छाएँ या समाजिक परिस्थितियों के अनुसार नहीं बल्कि शास्त्र की आज्ञा के अनुसार करना चाहिए। अपने बन्धुगण और आसपास के समाज को यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि हमें शास्त्र के अनुसार ही जीवन बिताना है। अच्छा हो या बुरा, नैतिक हो या अनैतिक, आचार-संप्रदाय हो या त्योहार-समारोह हर विषय में गीताशास्त्र का अध्ययन करके उसके अनुसार ही कार्य करना चाहिए। अर्थात् उपर्युक्त श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि हमारे जीवन से सम्बन्धित हर विषय में जिन कार्यों की अनुमति शास्त्र देता है हमें वे ही कार्य करना चाहिए और जिन कार्यों को शास्त्र ने मना किया हो उनसे दूर रहना चाहिए। तो, आइए, अब देखते हैं कि कर्मों के बारे में गीता शास्त्र क्या कहता है-

शास्त्र के कर्म

कर्मणो ह्यपि बोध्दव्यं बोध्दव्यं च विकर्मणः
अकर्मणश्च बोध्दव्यं गहना कर्मणो गतिः –4:17

कर्मों का तत्व भी जानना चाहिए और अकर्म का तत्व भी जानना चाहिए तथा विकर्म का तत्व भी जानना चाहिए। क्यों कि कर्मों की गति गहन है अर्थात् समझने में बडी कठिन है।

कर्म का अर्थ है काम या कार्य। मनुष्य द्वारा किया जाने वाला हर काम ''कर्म'' ही कहलाता है। खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना, बोलना जैसी सारी क्रियाएँ कर्म के अंतर्गत ही आती हैं। मनुष्य में अनुराग, ममता, लालच, तरफदारी जैसी अनेक कमजोरियाँ तो होती ही हैं। इस लिए समस्त मानव जाति के लिए कर्मों को निर्धारित करना किसी एक व्यक्ति के बस की बात नहीं है। तो फिर इन कर्मों को निर्धारित करने वाला निर्देशक कौन हो सकता है? जिस भगवान ने सारे विश्व का सृजन किया है और जिस के लिए कमजोरी नाम की कोई चीज ही नहीं है सिर्फ वही विधाता मानव जाति के लिए कर्मों को निर्धारित करके उनका निर्देशन कर सकता है। गीता शास्त्र में भगवान ने स्वयं इस विषय को स्पष्ट किया है।

1. विधित कर्म अर्थात् विधि पूर्वक करने वाले काम।

ये ऐसी आज्ञाएँ हैं जिनका पालन करने में कोई छूट या किसी प्रकार के बहाने का मौका नहीं है। इनमें कोई परिवर्तन या परिवर्धन नहीं किया जाना चाहिए।

2. विकर्म अर्थात् निषेधित काम।

इनसे हर हाल में दूर रहना चाहिए। किसी भी कीमत पर, यहाँ तक कि अपनी जान की बाजी लगी होने पर भी इनसे दूर रहना चाहिए।

इस प्रकार कर्म तथा विकर्म दोनों के बारे में संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करके हमें उनके अनुसार आचरण करते हुए अपने जीवन को आगे बढाना है।

आज हमारे समाज की दुर्गति का यही कारण है कि भगवद्गीता जैसे महान ग्रंथ के होते हुए भी हम न तो उसका अध्ययन कर रहे हैं और न ही उसके अनुसार आचरण। एक ओर जाति-धर्म के मतभेदों के कारण अनेकता और दूसरी ओर मद्यपान, रिश्वतखोरी, खून-खराबा तथा महिलाओं पर बलात्कार जैसे अनिष्टकारी विषयों से अनैतिकता हमारे समाज का सत्यानाश कर रहे हैं। इन सारी समस्याओं का समाधान शास्त्र में ही मिल सकता है। उसमें बताए गए 'कर्म' तथा 'विकर्म' दोनों को जानकर उनके अनुसार आचरण करना चाहिए। ''सच्चाई की गहराई'' से तात्पर्य यह नहीं कि वह बहुत कठिन है परन्तु उसका बारीकी से परिशीलन करना चाहिए।

ब्राह्मण कर्म

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम –18:42

मनका निग्रह करना, इन्दियों को वश में करना, धर्मपालन के लिए कष्ट सहना, बाहर भीतर से शुध्द रहना दूसरों के अपराध को क्षमा करना, शरीर,मन आदि में सरलता रखना, वेद, शास्त्र आदि का ज्ञान होना, यज्ञविधि को अनुभव में लाना और परमात्मा, वेद आदि में आस्तिक भाव रखना – ये सबके सब ही ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

उपर्युक्त श्लोक में विधित कर्मों के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। अब हम गहरे भाव वाले इन कर्मों का परिशीलन करेंगे। यहाँ पर दस प्रकार के कर्मों के बारे में बताया गया है। इन सारे कर्मों का आचरण करने वाला व्यक्ति उन्नत शिखर को प्राप्त करता है। इसी को ब्राह्मण कर्म कहा गया है। ब्राह्मण का अर्थ होता है ब्रह्मा को जानकर उनकी आज्ञा के अनुसार जीवन बिताने वाला। ब्रह्मा यानी भगवान का ज्ञान रखने वाला ब्राह्मण कहलाता है। भगवान की नजर में यही स्थिति सर्वोच्च होती है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए शास्त्र में बताए गए निम्न लिखित दस कर्मों का पालन अत्यंत आवश्यक है।

1. मन का निग्रह 2. इन्द्रियों को वश में करना 3. तपस्या 4. शुध्दता 5. ऋजु मार्ग 6. शास्त्र का ज्ञान 7. अनुभव ज्ञान 8. भगवान के प्रति विश्वास 9. गुरु के प्रति विश्वास 10. शास्त्र के प्रति विश्वास

1. मन का निग्रह

मन ही मनुष्य को चलाता है। इसके अंदर अच्छे-बुरे दोनों विषय निहित रहते हैं। मन के निग्रह से तात्पर्य है कि शास्त्र में निषिध्द विषयों के अनुकूल इसमें उठने वाली सारी कामनाओं तथा इच्छाओं को मारकर शास्त्र में विधित कर्मों के प्रति इसको प्रेरित करना। मन का निर्देशन ऐसा किया जाय कि वह हर विषय में बुराई की तुलना अच्छाई को चयन करने योग्य बनें। अंतिम दिव्यग्रंथ कुरान में इस प्रकार कहा गया कि - ''निश्चय ही सफलता पा गया वह जिसने आत्मा को पाक एवं विकसित किया, और विफल हुआ वह जिसने उसको दबा दिया'' 91:9-10

2. इन्द्रियों को वश में करना

इन्द्रियों से तात्पर्य है आँख, नाक, कान, जीभ और चर्म। इन्हीं पांच इन्द्रियों के सहयोग से शरीर के द्वारा किसी भी कर्म की पूर्ति होती है। इन इन्द्रियों को भगवान की आज्ञा के अनुसार सदुपयोग करने वाला व्यक्ति ही उन्नति तथा प्रगति को प्राप्त कर सकता है।

3. तपस्या

एकाग्रचित्त होकर नित्य करने वाले परिश्रम को तपस्या कहते हैं। (अरबी भाषा के ''जिहाद'' शब्द का यह भी एक अर्थ होता है) शास्त्र में बताए गए आदेशों के पालन के लिए दृढ संकल्प तथा एकाग्रचित्त से निरंतर कोशिश करनी चाहिए।

4. शुद्धता

वैयक्तिक तथा आसपास के वातावरण की शुद्धता होनी चाहिए। खाने-पीने की आदतें शास्त्र के नियमों के अनुसार होनी चाहिए। शुद्धता होने से न तो शारीरिक बीमारियाँ होंगी और न ही मानसिक समस्याएँ।

5. ऋजुमार्ग

ऋजुमार्ग से मतलब है सच्चा तथा सरल मार्ग। बुराई से दूर सच्चाई की ओर ले जाने वाला मार्ग और न्याय तथा अन्याय के बीच फैसला करते समय हर तरह की तरफदारी से दूर रखने वाला मार्ग।

6. शास्त्र का ज्ञान

शास्त्र में बताई गई आज्ञाएँ क्या हैं, भगवान ने कौन से काम करने की अनुमति दी और किन कार्यों से दूर रहने को कहा इसका सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

7. अनुभव ज्ञान

शास्त्र के अनुसार आचरण करने से होने वाले लाभ तथा उसके विपरीत जीवन बिताने से होने वाले दुष्परिणामों को स्वयं आनुभवों के साथ-साथ इतिहास से भी जानना चाहिए।

8. भगवान के प्रति विश्वास

सारे विश्व का सृजन करने वाला विधाता एक ही है। गीता शास्त्र के अनुसार न तो वह जन्म लेता है और न ही उसकी मृत्यु होती है। हमारे इन्द्रियों को वह व्यक्त होने वाला नहीं है। इस प्रकार शास्त्र में बताए गए भगवान के अनोखे गुणों को जानकर उन पर अटल विश्वास रखना जाहिए।

9. गुरु के प्रति विश्वास

शास्त्र का सही बोध कराने वाला ही सच्चा गुरु होता है। गुरु का अर्थ है अंधकार से प्रकाश की ओर चलाने वाला। अज्ञान भरित गुमराही जैसे अंधेरे से ज्ञान युक्त सन्मार्ग जैसे उजाले की ओर ले जाने वाला सबसे बडा गुरु जद्गुरु परमात्मा है। क्यों कि जब भी संसार में अधर्म बढकर धर्म का नाश होने लगता है तब दुष्टों का संहार करके सज्जनों की रक्षा करने के लिए भगवान द्वारा दी गई आज्ञाओं को

लाकर वे ऋषियों या पैगंबरों तक उन्हें पहुँचाते हैं। इन ऋषियों या पैगंबरों को भी गुरु कहते हैं क्यों कि वे लोगों को भगवान द्वारा दी गई आज्ञाओं से परिचित करवाकर उन्हें उन आज्ञाओं के अनुसार आचरण करने की प्रेरणा देते हैं। इस लिए जगद्गुरु द्वारा लाए गए संदेश का यथार्थ प्रचार करने वाले गुरुओं के प्रति विश्वास रखना चाहिए।

10. शास्त्र के प्रति विश्वास

समस्त मानव जाति को सन्मार्ग पर चलाने के लिए भगवान द्वारा भेजा गया संदेश ही शास्त्र है। इन शास्त्रों पर विश्वास करने से मतलब है कि हम सिर्फ वे ही काम करें जिन की अनुमति शास्त्र ने दी हो और जिन कार्यों को शास्त्र ने मना किया उन से हर हाल में दूर रहे।

उपर्युक्त दस विषयों का आचरण मनुष्य को उन्नत शिखर पर पहुँचाता है। इसी लिए इसे ब्राह्मण कर्म (सर्वोच्च कार्य) कहा गया।

नियतं कुरु कर्मत्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः।। -3:8

तू शास्त्रविधि से नियत किए हुए कर्तव्यकर्म कर, क्यों कि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

शास्त्रविधि से नियत कर्म अर्थात शास्त्र में बताए गए कार्यों को तो हमें करना ही है और इन्हें करते समय मन, वचन और कर्म की शुद्धता भी होनी चाहिए। कोई भी कर्म न करने की अपेक्षा ईश्वर की आज्ञा के अनुसार कार्य करना ही श्रेष्ठ होगा। वरना इस शरीर को मोक्ष सिद्धि प्राप्त नहीं होगी जो उसका परमलक्ष्य है।

शास्त्र को छोडकर किये जाने वाले कर्मों का परिणाम..?

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्वमाहो रजस्तमः।। -17:1

हे कृष्णा। जो मनुष्य शास्त्रविधि का त्याग करके श्रद्धापूर्वक पूजन करते हैं, उनकी निष्ठा फिर कौन सी है? सात्विकी है अथवा राजसी -तामसी

शास्त्र के महत्व पर इतना बल दिया जा रहा है, तो अगर हम शास्त्र को छोडकर अपनी इच्छानुसार सत्कर्म ही करेंगे तो क्या होगा? हम बुराइयों से दूर रहकर अच्छे काम करते रहेंगे तो क्या काफी नहीं है? यही सवाल अर्जुन के मन में भी उठता है। तो फिर आइए देखते हैं कि अर्जुन के इस सवाल का क्या जवाब दिया गया है-

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः।।

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्धयासुरनिश्चयान।। -17:5-6

जो मनुष्य शास्त्रविधि से रहित घोर तप करते हैं, (जो) दम्भ और अहंकार से अच्छी तरह युक्त हैं, जो भोगपदार्थ, आसक्ति और हठ से युक्त हैं, (जो) शरीर में स्थित पाँच भूतों को अर्थात पान्चभौतिक शरीर तथा अन्तःकरण में स्थित मुझको भी कृश करने वाले हैं, उन अज्ञानियों को (तू) आसुर निष्ठावाले (आसुरी सम्पत्तिवाले) समझ।

शास्त्र को छोडकर अपनी इच्छा के अनुसार जीवन बिताने से सहज ही मनुष्य में जो दुर्गुण आजाते हैं उनका वर्णन यहाँ पर किया गया है। जैसे 1. इन्द्रियों को कृश करना 2. ईश्वर को दुःख देना 3. दम्भ और अहंकार 4. भोगपदार्थ - आसक्ति 5. पशुबल 6. अज्ञान 7. घोरतप

1. इन्द्रियों को कृश करना

आत्मा अंतरेन्द्रिय होती है। शरीर अपरा प्रकृति अर्थात् इहलोक से संबंधित पंचभूतों से बनता है। इसी लिए यह आसानी से मिट्टी में मिल जाता है। पर आत्मा की बात अलग है। वह परा प्रकृति से बनकर मनुष्य के अंदर रहने वाली अदृश्य वस्तु है। इसके मिलन से ही शरीर में चेतना आती है। परन्तु शरीर के साथ इसका अंत नहीं होता। जब आहार की बात आती है तब मिट्टी से बने इस शरीर को मिट्टी से उत्पन्न होने वाली चीजें शक्ति प्रदान कर सकती हैं। परन्तु आत्मा को आहार कहाँ से मिलेगा? वह तो पराप्रकृति से बनी है, इस लिए उसको वहाँ से बना हुआ आहार ही चाहिए। तभी उसकी सक्रियता बनी रहेगी है। उसको बनाने वाले विधाता का स्मरण करना ही उसका असली आहार है। उस विधाता की असली जानकारी आनेवाले पृष्ठों में हम देख सकते हैं। जिस प्रकार बिना आहार के शरीर कमजोर पड़ जाता है उसी प्रकार आत्मा को भी आहार के बिना कमजोरी आ जाती है। पंचेन्द्रियों की भी यही बात है। आँख, कान, नाक, जीभ और चर्म- ये सारे इंद्रिय जब तक अपने सृष्टिकर्ता द्वारा विधित कर्मों में लगे रहेंगे तब तक उनमें शक्ति तथा सक्रियता बनी रहेगी। वरना वे कृश हो जाते हैं। इस लिए शास्त्र में विधित कर्मों का आचरण अत्यंत आवश्यक है।

2. ईश्वर को दुःख देना

इश्वर को दुःख देने से मतलब क्या है? यह बहुत ही अजीब सी बात है ना? उदाहरण के लिए कुछ पुत्र हैं जो पिता की किसी भी बात की परवाह नहीं करते, किसी भी आज्ञा का पालन नहीं करते परन्तु अपनी इच्छानुसार भले काम ही करते हैं। पिता के मुकाबले दूसरों को सम्मान देते हैं। तब उस पिता की हालत क्या होगी? खुशी होगी या दुःख? ऐसे ही बहुत सारे लोग भगवान द्वारा शास्त्र में बताए गए आदेशों को छोडकर भले कार्य ही कर रहे हैं। भगवान को दिया जाने वाला सम्मान तथा स्थान दूसरों को दे रहे हैं और भगवान को छोडकर उसके स्थान पर दूसरों की पूजा कर रहे हैं। तो ऐसे लोगों से भगवान को खुशी होगी या दुःख?

3. दम्भ और अहंकार

अकसर ऐसा होता है कि बिना किसी सहायता के अपने कार्यों को स्वतंत्र रूप से सफल बनाने पर मनुष्य में घमण्ड की झलक दिखाई देती है। निर्णय लेने का अधिकार अगर हो तो उसके अहंकार की कोई सीमा ही नहीं रहती।

4. भोगपदार्थ - आसक्ति

इन के लिए ''कामराग'' शब्द का प्रयोग किया गया। काम शब्द भोगपदार्थों का वाचक है। उन पदार्थों में रंग जाना, तल्लीन हो जाना, एकरस हो जाना ''राग'' है। मालिक के अधीन में न होकर स्वयं निर्णय लेने की क्षमता अगर मनुष्य में आजाए तो वह क्या करेगा? अपनी इच्छाओं की पूर्ति को ही प्रधानता देगा। फिर उसके बाद अपने माता-पिता, बीवी-बच्चे जैसे अपनों के लाभ के बारे में ही सोचेगा।

5. पशुबल

जिस व्यक्ति में अहंकार, अधिकार और बन्धुगण का सहकार हो उसके पास अच्छे - बुरे की तमीज नहीं होती। उसकी ऐसी सोच बन जाती है कि वह किसी के साथ भी कुछ भी कर सकता है। इसी सोच के कारण वह अत्याचार, हत्याएँ आदि जुर्म करते जाता है। इसी को पशुबल कहते हैं।

6. अज्ञान

वे अपनी विचक्षणता को खो जाते हैं।

7. घोरतप

जिस व्यक्ति ने शास्त्र में विधित कर्मों को छोड दिया हो उसके पास कोई नियम-कानून नहीं होता। वह अपनी इच्छा के अनुसार अपने ही स्वार्थ के बारे में सोचता है और कार्य करता है। अपने कार्यों द्वारा दूसरों को चाहे कितनी भी तकलीफ क्यों न हो, उसकी परवाह नहीं करता। अपने इन कार्यों से वह खुद भी मुश्किलों में फंस जाता है।

उपर्युक्त सारे गुण शास्त्र में विधित कर्मों को छोडने के कारण उत्पन्न होते हैं। उसी को असुर अर्थात् राक्षस स्वभाव कहते हैं। इस लिए जो व्यक्ति चाहता है कि उस में मनुष्यता हो, और इहलोक में शान्ति तथा परलोक में मोक्ष प्राप्त हो उसके लिए शास्त्र का अनुसरण करना अत्यंत आवश्यक है।

शास्त्र किनसे प्रकट होता है?

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवन्ति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम।। **-3:14-15**

सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न की उत्पत्ति वर्षा से होती है। वर्षा यज्ञ से होती है। यज्ञ कर्मों से संपन्न होता है। कर्मों को तू वेद से उत्पन्न जान और वेदको अक्षर परब्रह्म से प्रकट हुआ जान इस लिए वह सर्वव्यापी परमात्मा यज्ञ (कर्तव्यकर्म) में नित्य स्थित हैं।

जो शास्त्र सभी को प्रामाणिक है उसे कौन बना सकता है? वही सृष्टिकर्ता जिसने सभी को बनाया है। इसी लिए यहाँ पर कहा गया कि वेद अक्षर परब्रह्मा से प्रकट होता है। वेद का अर्थ है भगवान की ओर से प्राप्त दिव्यज्ञान। यही शास्त्र के रूप में दिया जाता है। और मनुष्य को सन्मार्ग पर चलाने के लिए इस शास्त्र के अनुसरण के अलावा और कोई चारा नहीं है। अर्जुन के पास भेजा गया यह गीताशास्त्र क्या नया है? उसमें क्या कोई नया संदेश दिया गया? नहीं, यह वही संदेश है जो प्राचीन काल से सभी ऋषियों या पैगंबरों को दिया जा रहा है।

शास्त्रविधि

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम ।
विवस्वान मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेब्रवीत ।। **-4:1**

मैं ने इस अविनाशी योग (कर्मयोग) को सूर्य से कहा था। फिर सूर्य ने (अपने पुत्र) वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने (अपने पुत्र) राजा इक्ष्वाकु से कहा।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ।। **—4:2**

हे परन्तप। इस तरह परम्परा से प्राप्त इस कर्मयोग को राजर्षियों ने जाना (परन्तु) बहुत समय बीत जाने के कारण वह योग इस मनुष्यलोक में लुप्तप्राय हो गया।

स एवायं मया तेद्या योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम ।। **—4:3**

तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इस लिए वही यह पुरातन योग आज मैं ने तुझसे कहा है, क्यों कि यह बडा उत्तम रहस्य है।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम ।। **—4:15**

पुर्वकाल के मुमुक्षुओं ने भी इस प्रकार जानकर कर्म किए हैं, इस लिए तू भी पूर्वजों के द्वारा सदा से किए जाने वाले कर्मों को ही कर।

''सूर्य'' शब्द का अर्थ होता है सबसे पहला। ''शिव'', ''आदि'' या ''आदित्य'' भी उसी के अन्य अर्थ होते हैं। जिस व्यक्ति से मानवजाति का प्रारंभ हुआ उसी को सूर्य कहा गया है। सबसे पहले भगवान का संदेश इस आदिपुरुष को दिया गया था। फिर उसके बाद ऋषियों की परंपरा को दर्शाते हुए वही कर्मयोग सभी ऋषियों के पास भेजा गया। हिन्दुस्तान में अर्जुन के पास भेजा गया संदेश भी कुछ नया नहीं बल्कि वही पुरातन कर्मयोग है जो सदियों से चलता आ रहा है। उस संदेश का खुलासा हम आनेवाले पृष्ठों में देख सकते हैं। तो फिर यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि कई महाशयों ने इस संदेश को स्वीकार करके अपना जीवन धन्य बनाया था। ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हुए, शास्त्रों का अनुसरण करते हुए वे सब इहलोक में शांति और परलोक में मोक्ष के हकदार बन गए। इस लिए हमें भी उनका अनुसरण करने का संदेश दिया जा रहा है।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम ।। —9:2

यह विज्ञान सहित ज्ञान अर्थात् समग्ररूप सम्पूर्ण विद्याओं का राजा (और) सम्पूर्ण गोपनीयों का राजा है। यह अति पवित्र तथा अति श्रेष्ठ है और इसका फल भी प्रत्यक्ष है। यह धर्ममय है, अविनाशी है और करने में बहुत सुगम है अर्थात् इसको प्राप्त करना बहुत सुगम है।

भगवान द्वारा दिया गया यह संदेश दुनिया भर में सर्वश्रेष्ठ है। मानव जाति को सच्चे तथा सीधे मार्ग पर चलाने के लिए इससे बढकर और कोई विद्या विश्व में है ही नहीं। इसी लिए इसको ब्रह्मज्ञान कहा गया। यह संदेश केवल पवित्र ही नहीं बल्कि धर्म के मार्ग पर चलाने वाला भी है। इसी लिए इस को जानना अत्यंत आवश्यक है। साधारणतः स्वार्थपरक पंडितों से हम सुनते हैं कि ''आम लोगों के लिए शास्त्र को समझना तो मुश्किल कार्य है ही, परन्तु उसके अनुसार आचरण करना अत्यंत कठिन है। इसलिए शास्त्र को हम देख लेंगे और आप सिर्फ हमारा कहना मानिए।''

जो लोग इन पंडितों की बातों में आ जाते हैं वे शास्त्रों से दूर होते जा रहे हैं। तो क्या शास्त्र का अध्ययन तथा आचरण सचमुच इतना कठिन कार्य है? नहीं। शास्त्र में तो पंडितों के कथन के विपरीत इस कार्य को एकदम सरल तथा सुगम बताया गया है। तो अब हम किसका कहना मानें? शास्त्रों का या शास्त्रियों का? हर हाल में शास्त्र को ही मानना चाहिए जिसको विश्वभर में पवित्र तथा सर्वोच्च ब्रह्मज्ञान कहा गया है। भगवान अपने पास के अत्यंत गोपनीय इस शास्त्र को हमें प्रकट करना चाहता है ताकि हमारी जिन्दगियों का सही दिशा-निर्देशन हो सके। इतना ही नहीं, इसमें बताया गया संदेश हमेशा के लिए कायम रहेगा। ब्रह्मज्ञान का जो संदेश पहले वेदों तथा उपनिषदों में बताया गया था उसी को भगवद्गीता में भी स्पष्ट किया गया है। गीताशास्त्र के बाद अवतरित किए गए बाइबल और कुरान ग्रंथों में भी इसी ब्रह्मज्ञान को अविनाशी बताया गया है।

इस लिए भगवान चाहता है कि इतनी महानता वाले इस शास्त्र के प्रकाश में हम अपने जीवन को आगे बढाएँ। आज हमारा समाज अनेक प्रकार की समस्याओं का शिकार बना हुआ है। किसी अंदरूनी भाग की बीमारी को ठीक करने के लिए हम शरीर के ऊपर कितनी भी दवा क्यों न लगाए उससे कोई लाभ नहीं होगा। उसी प्रकार सारी परेशानियों का हल जब भगवान शास्त्र के अनुसरण में दिखा रहा है तो उसको छोडकर हम अपनी होशियारी दिखाने की कोशिश कर रहे हैं। फलतः समस्या को सुलझाने की बजाय हम नयी-नयी समस्याओं में उलझ रहे हैं। इस लिए जहाँ पर शास्त्र के अनुसरण से होने वाले लाभों के बारे में बताया गया वहीं पर शास्त्र को छोडकर अपनी मनमानी करने से होने वाले दुष्परिणामों की चेतावनी भी दी गई है-

शास्त्र को छोडने के परिणाम..?

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम।। —16:23

जो मनुष्य शास्त्रविधि को छोडकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को, न सुख (शान्ति) को और न परमगति को ही प्राप्त होता है।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।। —3:16

हे पार्थ। जो मनुष्य इस लोक में इस प्रकार परम्परा से प्रचलित सृष्टि-चक्रके अनुसार नहीं चलता, वह इन्द्रियों के द्वारा भोगों में रमण करने वाला अघायु (पापमय जीवन बिताने वाला) मनुष्य (संसार में) व्यर्थ ही जीता है।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।। —9:3

हे परन्तप। इस धर्म की महिमा पर श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर मृत्युरूप संसार के मार्ग में लौटते रहते हैं।

उपर्युक्त शलोकों में यह चेतावनी दी गई है कि शास्त्र में बताई गई भगवान की आज्ञाओं की उपेक्षा करके अपनी इच्छानुसार आचार-व्यवहार तथा संप्रदाय बनाने के क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं। वे हैं- 1. सिद्धि प्राप्त न करना 2. सुख न होना 3. पापमय जीवन बिताना 4. इन्द्रियों के भोग में रमण करना 5. व्यर्थ ही जीना 6. मृत्युरुप संसार के मार्ग को पाना 7. मोक्ष को प्राप्त न करना

1. सिद्धि प्राप्त न करना

छोटी हो या बडी हर चीज का और हर प्राणी का अपना एक लक्ष्य होता है। इस संसार में कोई भी वस्तु बिना लक्ष्य के नहीं है। उदाहरण के लिए पंखे को ही लीजिए, उसका लक्ष्य है हवा देना। पंखा चलाने पर भी उससे अगर हवा न निकले तो वह बेकार की वस्तु ही कहलाता है। इस लिए मनुष्य को भी अपने जीवन का परमलक्ष्य जानकर उसकी प्राप्ति के लिए पूरी कोशिश करनी चाहिए। तो फिर मानव जीवन का लक्ष्य क्या है? - ''अपने जीवन के हर विषय में शास्त्र में भगवान द्वारा बताए गए ब्रह्मज्ञान का परिशीलन करके उसके अनुसार कार्य करना चाहिए। तभी वह मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। इसी को सिद्धि प्राप्त करना कहते हैं। जो व्यक्ति अपने जीवनलक्ष्य की उपेक्षा करेगा वह सिद्धि प्राप्त नहीं करेगा। उसकी न तो दुनिया की नजर में कोई कीमत होगी और न ही भगवान की नजर में।

2. सुख न होना

सुख और शान्ति ऐसी चीजें हैं जिनकी हम कोई कीमत नहीं लगा सकते। मेहनत-मजदूरी से मिलने वाली भी नहीं हैं। उन्हें हम तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हमारा जीवन शास्त्र में दिखाए गए मार्ग पर हो। पैसे से सुविधाएँ मिल सकती हैं पर सुख नहीं। सुख तो मन की शान्ति से ही मिलता है और शान्ति भगवान की आज्ञाओं के पालन से मिलती है।

3. पापमय जीवन बिताना

मनुष्य मतलबी प्राणी है। हमेशा अपने स्वार्थ के बारे में ही सोचता है। हर काम में अपने और अपने सगे सम्बन्धियों के फायदे के बारे में ही विचार करता है। इससे दूसरों का कितना भी नुकसान होजाय परवाह नहीं करता। भगवान द्वारा दिए गए धर्म-शास्त्र की परवाह न करने वाले ऐसे मनुष्य में न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य जैसे विषयों की तमीज नहीं होती। इस लिए वह पापमय जीवन ही बिताता है।

4. इन्द्रियों के भोग में रमण करना

मनुष्य के इन्द्रिय हमेशा इहलोक सम्बन्धित सुखों की चाहत रखते हैं। इस लिए वे बुराइयों की ओर बहुत जल्दी आकर्षित हो जाते हैं। भगवान द्वारा भेजे गए शास्त्रों का अनुसरण ही इन्द्रियों के नियंत्रण का एकैक मार्ग है। जो मनुष्य शास्त्रों का अनुसरण छोड देता है वह इन्द्रियों का गुलाम बन जाता है। फलतः बुराइयों में डूब जाता है और अपने इन्द्रियों की संतुष्टि के लिए अनेक पाप कार्य करते जाता है।

5. व्यर्थ ही जीना

अच्छे-बुरे की तमीज न रखने वाला, धर्म-अधर्म की परवाह न करने वाला मनुष्य धूर्त और बदमाश बन जाता है। शास्त्रों को छोडने के कारण वह सुख और शान्ति से दूर तो हो जाएगा ही और साथ-साथ समाज की नजर में भी वह दुष्ट बन जाएगा। ऐसे व्यक्ति की कहीं पर भी कोई इज्जत नहीं होती। भगवान की नजर में वह व्यर्थ ही जीने वाला है।

6. मृत्युरुप संसार के मार्ग को पाना

गीताशास्त्र में इस सांसारिक जीवन को अनित्य और सुखरहित बताया गया है। फिर भी मनुष्य यहाँ पर नित्य रहने के लिए और सुख प्राप्त करने के लिए प्रयास करते रहता है। परन्तु उसे मिलता क्या है? अनेक नष्ट उठाने पडते हैं और कई कठिनाइयों का सामना करता रहता है। अगर कहीं पर सुख मिलता है तो वह भी सिर्फ कुछ देर के लिए ही है। यह जानते हुए भी मनुष्य इस अनित्य जीवन की ओर लगाव बनाया रखता है। क्यों कि उसकी यह गलतफहमी होती है कि इस संसार में मिलने वाली सुख-सुविधाएँ शाश्वत हैं। वास्तव में ये सब शास्त्र को छोडने के कारण उत्पन्न होने वाली विषम परिस्थितियाँ हैं। इसी को मृत्युरूप संसार मार्ग कहा गया।

7. मोक्ष को प्राप्त न करना

मोक्ष अथवा मुक्ति का अर्थ है नरक से बचना। इस संसार में हमारा जीवन अनित्य ही है। हमारी आँखों के सामने ही विभिन्न आयु स्तर के लोग मृत्यु की गोद में जा रहे हैं। मनुष्य यहाँ पर जितने भी दिन जी लेगा, एक दिन उसको मृत्यु जरूर आएगी। इस लिए यह जीवन अनित्य है। इसके विपरीत परलोक जीवन शाश्वत है क्यों कि वहाँ पर मृत्यु नहीं होती। उस शाश्वत लोक में दो ही स्थान होते हैं- १. स्वर्ग २. नरक। स्वर्ग में सारी सुख सुविधाएँ होती हैं। हमारे मन की हर इच्छा पूरी होती है। सदा रहने वाली जवानी मिलती है। वहाँ मृत्यु नहीं होती। दूसरी ओर नरक है जहाँ सिर्फ यातनाएँ होती हैं। वहाँ का जीवन हर तरफ से आग से घिरा हुआ रहता है। मलमूत्र, पीप, नाखून और बालों से भरी हुई वैतरणी नदी होती है जिसमें नरकवासी पडे डूबते रहते हैं। वहाँ की यह दुखद स्थिति हमोशा रहती है और मृत्यु भी नहीं आती। नित्य रहने वाले उस भयानक नरक से बचकर शाश्वत स्वर्ग को प्राप्त करना ही मोक्ष है। वह मोक्ष अपनी इच्छानुसार जीवन बिताने से नहीं बल्कि शास्त्र का अनुसरण करने से ही मिलता है।

अब तक की हमारी चर्चा में

गीताशास्त्र का महत्व और शास्त्र के अनुसरण से होने वाले लाभ तथा उसकी उपेक्षा से होने वाले दुष्परिणाम स्पष्ट किए गए हैं। आइए अब देखते हैं कि इतने महत्वपूर्ण इस शास्त्र में चर्चित मुख्य विषय क्या हैं।

सृष्टिकर्ता का परिचय

एकैक ईश्वर की ही शरण में क्यों जाएँ?

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। **-18:66**

सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोडकर (तू) केवल मेरी शरण में आ जा।
मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।

उपर्युक्त श्लोक में धर्म से सम्बन्धित तीन अत्यंत महत्वपूर्ण विषयों की व्याख्या की गई है। वे तीनों विषय एक दूसरे से अनुसंधानित हैं।

1. सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोडना
2. एकैक ईश्वर की शरण में जाना
3. सम्पूर्ण पापों से मुक्ति पाना

1. भारतीय समाज में जाति तथा धर्म के नाम पर अनेक वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग ने अपना अपना एक भगवान बना लिया है। सभी के अपने-अपने आचार-संप्रदाय हैं। हर वर्ग यह मानता है कि जो धर्म उनके पास है वही सत्य है। जब शास्त्र एक ही है तब इतने सारे भगवान और धर्म कहाँ से आगए? इसका मतलब यही हुआ कि लोग शास्त्र को छोडकर अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार अलग अलग धर्म बनाते जा रहे हैं। इस लिए गीताशास्त्र में इन सभी कल्पित धर्मों को छोडने की आज्ञा दी गई है।

2. आज हमारे समाज के विभिन्न वर्गों के बीच एकता नहीं है। क्यों कि प्रत्येक वर्ग ने अपना एक भगवान बनाकर उसको एक अलग रूप दे दिया है। इस प्रकार भगवान के नाम पर लोग अनेक वर्गों में विभक्त हो रहे हैं और एक दूसरे के दुश्मन भी बन रहे हैं। इस कारण दंगे फसाद भी फैल रहे हैं। तो इस समस्या को कैसे सुलझाया जा सकता है? जहाँ पर बीमारी हो वहीं पर दवा लगानी चाहिए। सारे फसाद की जड है भगवान के नाम पर बनाए गए कल्पित विश्वास। अनेक भगवानों को बना लेने के कारण ही आज समाज में अनैक्यता बढ गई है। इस लिए शास्त्र में कहा गया कि हम सबका भगवान एक ही है। हमें उस एकैक ईश्वर की ही आराधना करनी चाहिए। तभी मानव जाति में व्याप्त अनैक्यता दूर होकर एकता की स्थापना होगी।

3. पापों से मुक्ति पाने के लिए मनुष्य अनेक प्रकार के कार्य करते रहते हैं। भोजन इत्यदि दान देना, गरीबों की सहायता करना, दूसरों की समस्याओं को सुलझाने में हाथ बटाना आदि पुण्य कार्यों के पीछे मुख्य उद्देश्य यही होता है कि उनके द्वारा हम अपने पापों से मुक्ति प्राप्त करें। इस प्रकार के पुण्य कार्य हमें करते रहना चाहिए। परन्तु शास्त्र में एक और आसान उपाय बताया गया जिसके द्वारा हम अपने पापों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। वो है एकैक ईश्वर की शरण में जाना। भगवान को एक मानकर उसी की आराधना करने से हमें अपने पापों से मुक्ति मिलेगी। इस को छोडकर नदियों में डुबकियाँ लगाना, वन में या हिमालय पर्वतों में जाकर तप कर लेना, तीर्थ यात्राएँ करना या अपने धर्म अथवा मजहब को बदल लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। समस्त सृष्टि को बनाने वाले उस सर्वेश्वर की आराधना ही काफी है।

NOTE: परिवर्तन मजहब में नहीं बल्कि हमारे हृदय में आनेवाली सोच में होना चाहिए। कल्पित विश्वासों को छोडकर भगवान के बारे में बताए गए वास्तव विषयों के आधार पर अपना विश्वास बनाएँगे तो वही विश्वास हमें सत्कर्मों के प्रति प्रेरणा देगा।

''मेरी शरण में आ जा''- इस वाक्यांश को लेकर एक गलत फहमी फैल गई है कि यह श्रीकृष्ण ने कहा है और हमें श्रीकृष्ण की आराधना करनी चाहिए। परन्तु

गीताशास्त्र का अध्ययन करते समय उसका परिशीलन करना अत्यंत आवश्यक है। क्यों कि गीताशास्त्र में कुछ ऐसे श्लोक हैं जो एक दूसरे के विरुद्ध दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए सृष्टिकर्ता के बारे में बताते हुए कुछ श्लोकों में उन्हें अव्यक्त रूप वाला बताया गया और कुछ श्लोकों में मनुष्य रूप का आश्रय लेने वाला या मनुष्य रूप में अवतरित होने वाला कहा गया। परस्पर विरुद्ध दिखने वाले इन श्लोकों को बिना परिशीलन के पढने वाला एक सामान्य पाठक उलझन में पढ जाता है कि किस अर्थ को लें और इस उलझन के कारण वह शास्त्र को छोडकर अपनी इच्छानुसार जीवन बिताने लगता है।

वास्तव में ये दोनों श्लोक एक दूसरे के विरुद्ध नहीं है। परन्तु इस विषय को समझने के लिए बारीकी से परिशीलन करना अत्यंत आवश्यक है। सबसे पहले हमें गीताशास्त्र में बताए गए प्रमुख पात्रों के व्यक्तित्व को समझना चाहिए। तभी हम बिना किसी उलझन के हर श्लोक को समझ सकते हैं।

गीताशास्त्र में "भगवान उवाच", ''अर्जुन उवाच'' शब्दों का प्रयोग हम देख सकते हैं। इनका अर्थ होता है ''भगवान ने इस प्रकार कहा'' या ''अर्जुन ने इस प्रकार कहा।'' ''भगवान ने इस प्रकार कहा'' (जो मैं तुम्हें सुना रहा हूँ)- इन शब्दों का प्रयोग कब किया जाता है? जब संवाद करने वाला व्यक्ति स्वयं बताने वाला हो तो इन शब्दों को प्रयोग करने की कोई जरूरत नहीं होती। अपनी बात को वह साफ और सीधा कह सकता है। सुनने वाले को भी इस में कोई उलझन नहीं होगी।

एक उदाहरणः-

मेरे पिताजी को कल शाम 4 बजे अपने एक मित्र के साथ सफर करना है और इस बात की खबर देने के लिए पिताजी ने मुझे उस मित्र के पास भेजा। अब पिताजी के उस मित्र के सामने मेरा संवाद क्या होगा? ''पिताजी ने आप से यह कहने को कहा कि कल शाम 4 बजे वे बस स्टाप पहुँचेंगे''। इस समाचार में मुख्य विषय तीसरे व्यक्ति (अन्य पुरुष) से संबधित है। परन्तु इस संवाद में पहला व्यक्ति अर्थात् कहने वाला (प्रथम पुरुष) मैं हूँ और दूसरा व्यक्ति अर्थात् सुनने वाला (मध्यम पुरुष) मेरे पिताजी के मित्र हैं। जिस व्यक्ति के बारे में कहा गया (अन्य पुरुष), वे हैं मेरे पिताजी।

इसी संवाद में अगर मुझे खुद के बारे में समाचार देना होता तो मैं सिर्फ इतना कह देता कि ''कल शाम 4 बजे मैं बस स्टाप पहुँचूँगा और आप भी आजाइए''। यहाँ पर मुझे अपना परिचय देना नहीं पडता कि ''मैं किसी और का समाचार सुना रहा हूँ''। एक व्यक्ति जब सामने वाले को किसी तीसरे व्यक्ति का संदेश सुनाने लगता है तो वहाँ पर उस तीसरे व्यक्ति के नाम को प्रस्तावित करना जरूरी है। वरना सुनने वाला इस गलत फहमी में जा सकता है कि कहने वाला इस संदेश को अपनी ओर से स्वयं कह रहा है। गीताशास्त्र के संवादों के विषय में भी लोग इसी प्रकार अनेक उलझनों में पडे हुए हैं और इन उलझनों के कारण सच्चाई को पहचान नहीं पा रहे हैं।

गीताशास्त्र में बताए गए ''भगवान उवाच'', ''अर्जुन उवाच'' ''संजय उवाच'' शब्दों का अर्थ क्या है? भगवान उवाच का अर्थ है भगवान ने कहा, अर्जुन उवाच का अर्थ है अर्जुन ने कहा और संजय उवाच का अर्थ है संजय ने कहा। तो यहाँ पर यही स्पष्ट होता है कि कहने वाला स्वयं श्रीकृष्ण नहीं है। तीन प्रधान अस्तित्व व्यक्त होते हैं-

1. यहाँ पहला व्यक्ति (उत्तम पुरुष) श्रीकृष्ण परमात्मा है। इन्होंने दूसरे व्यक्ति (मध्यम पुरुष) अर्जुन के पास तीसरे व्यक्ति (अन्य पुरुष) भगवान अर्थात् सारी सृष्टि का सृजन करने वाले ईश्वर के संदेश को पहुँचाने का कार्य किया है।

2. श्रीकृष्ण परमात्मा के सामने खडा होकर गीताशास्त्र को सुनने वाला और धर्म के प्रति होने वाले अपने संदेहों को व्यक्त करके उनकी निवृत्ति कराने वाला दूसरा अस्तित्व (मध्यम पुरुष) अर्जुन है।

3. तीसरा अस्तित्व (अन्य पुरुष) भगवान है जो सारी सृष्टि का सृजन करनेवाला ईश्वर या सर्वेश्वर कहलाता है। उसने अपना संदेश श्रीकृष्ण परमात्मा द्वारा अपने द्वारा चुने गए ऋषि यानी अर्जुन के पास भेजा ताकि अर्जुन बाकी लोगों में उस संदेश का प्रचार करें।

श्रीकृष्ण परमात्मा ने भगवान और अर्जुन के बीच एक संदेशहर का पात्र निभाया है। परमात्मा कहलाने वाले इस देवता ने सर्वसृष्टि का सृजन करने वाले ईश्वर के

आदेशों को उस ईश्वर द्वारा नियुक्त ऋषि अर्जुन तक पहुँचाने के लिए श्रीकृष्ण का रूप धारण किया था। इस प्रकार ऋषि के पद पर नियुक्त अर्जुन श्रीकृष्ण परमात्मा द्वारा सुनाए गए ईश्वर के संदेश का लोगों में प्रचार करते रहे।

NOTE: इस विषय का और विवरण हम जनाब अह्मद अली साहब द्वारा लिखित ***(MY FINDINGS FROM GITA CONFORM WITH QURAAN)*** किताब से प्राप्त कर सकते हैं।

तो यहाँ पर तीन अस्तित्वों की उपस्थिति को हम देख सकते हैं।

1. सर्वसृष्टि का सृजन करने वाला भगवान जिसको हम ईश्वर या सर्वेश्वर भी कह सकते हैं।

2. उस ईश्वर की आज्ञाओं को उसके द्वारा नियुक्त पैगम्बर यानी ऋषियों तक पहुँचाने वाला परमात्मा (इसी अस्तित्व को बाईबल में परिशुद्धात्मा या गाब्रियेल और कुरान में विश्वसनीय या पवित्र आत्मा या जिब्रईल कहा गया)।

3. ईश्वर द्वारा नियुक्त पैगम्बर या ऋषि जो परमात्मा द्वारा सुनाए गए संदेश का लोगों में प्रचार करते हैं।

जब इन सच्चाइयों का खुलासा हो जाएगा तब मन में निहित सारी उलझनें दूर हो जाएँगी और गीताशास्त्र को हम प्रशान्त चित्त से अध्ययन करके उसके अर्थको समझ सकते हैं। हम सब जानते हैं कि गीताशास्त्र मुख्य रूप से दो व्यक्तियों के बीच यानी श्रीकृष्ण परमात्मा और अर्जुन के बीच हुआ संवाद है। हर अध्याय के अंत में इस विषय को स्पष्ट किया गया है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे

''ॐ, तत्, सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और
योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद रूप श्रीकृष्णार्जुन संवाद''

अर्थात् यह ब्रह्मविद्या (ईश्वर के धर्म) के बारे में श्रीकृष्ण परमात्मा और अर्जुन के बीच हुआ संवाद है। सुनाने वाला श्रीकृष्ण परमात्मा है और सुनने वाला है अर्जुन।

तो अब यहाँ पर स्पष्ट हो जाता है कि ''मेरी शरण में आ जा'' वाक्य श्रीकृष्ण परमात्मा की नहीं बल्कि भगवान की है। निम्न लिखित श्लोक को समझेंगे तो इस विषय का और खुलासा हो जाएगा।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।। **–18:62**

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन। तू सर्वभाव से उस ईश्वर की ही शरण में चला जा। उसकी कृपा से तू परम शान्ति को और अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जाएगा।

उपर्युक्त श्लोक में श्रीकृष्णपरमात्मा ने अपने से अलग एक और अस्तित्व का परिचय कराते हुए उसी की शरण में चले जाने को कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि जिस ईश्वर का वे परिचय करवा रहे हैं वह उनसे भी महान और महोन्नत है। श्रीकृष्ण केवल मध्यवर्ती का पात्र निभाने वाले परमात्मा हैं, सृष्टिकर्ता नहीं। जिस ईश्वर का वे परिचय करवा रहे हैं वही समस्त सृष्टि को बनाने वाला सृष्टिकर्ता यानी विधाता अथवा भगवान है। उस ईश्वर की शरण में जाने का अर्थ है उसकी आराधना करना, पूजा करना, उपासना करना, उसकी आज्ञाओं का पालन करना और उन आज्ञाओं के अनुसार सत्कर्म करना और दुष्कर्मों से दूर रहना। इस प्रकार ईश्वर की शरण में जाने से दो प्रमुख लाभ होते हैं- 1. सर्वोच्च शान्ति और 2. शाश्वत मोक्ष।

शान्ति और मोक्ष ऐसे विषय हैं जिनकी हम कोई कीमत नहीं लगा सकते। इन्हें न तो धन से खरीदा जा सकता है और न ही अधिकार से प्राप्त किया जाता। दुनिया की कोई भी चीज इनकी बराबरी नहीं कर सकती। जो भी इन्हें प्राप्त कर लेगा वह विश्वभर में खुशनसीब बन जाएगा। इन्हें प्राप्त करने के लिए ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना ही एकैक मार्ग है। आइए अब देखते हैं कि **18:62** श्लोक में श्रीकृष्ण परमात्मा द्वारा परिचय करवाये गए उस ईश्वर के गुण क्या हैं-

ईश्वर के गुण

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।। **–10:2**

मेरे प्रकट होने को न देवता जानते हैं और न महर्षि; क्यों कि मैं सब प्रकार से देवताओं का और महर्षियों का आदि हूँ।

समस्त सृष्टि को अनुशासन युक्त चलाने के लिए भगवान द्वारा बनाए गए विशेष जीव ही ''देवता गण'' है। मानव जाति को व्यावहारिक जीवन में एक आदर्श दिखाने के लिए भगवान द्वारा नियुक्त ऋषियों या पैगंबरों के पास भगवान का संदेश ले आने वाले परमात्मा भी एक देवता है। वर्षा के लिए, हवा के लिए, धूप के लिए, पर्वतों के लिए, मनुष्यों के प्राण निकालने के लिए तथा प्रत्येक मनुष्य के हर कार्य को लिपिबद्ध करने के लिए- इस प्रकार हर कार्य के लिए अनेक देवताओं को जिम्मेदारियाँ दी गई हैं। समूह को गण कहते हैं। प्रत्येक विभाग में देवताओं का एक समूह काम करते रहता है। देवताओं के इन समूहों को ही देवगण कहते हैं। मनुष्यों की तरह देवताओं में स्त्री-पुरुष जैसे लिंग भेद नहीं होते। वे सब एक ही होते हैं। सिर्फ भगवान ही जानता है कि वे कैसे दिखते हैं और उनका आकार क्या है? परन्तु संदेश लाने वाले परमात्मा के बारे में वे ऋषि या पैगम्बर जानते हैं जिन के पास वे संदेश ले जाते थे। वे न तो जन्म या मृत्यु प्राप्त करते हैं और न ही आँखों को दिखाई देते हैं। इस लिए लोग उनकी असली जानकारी न होने के कारण उनको ईश्वर के समान मानने के साथ-साथ उनके रूपों की कल्पना भी कर रहे हैं। जब भी किसी देवता को मनुष्यों के पास भेजा जाता है तब वे मनुष्य देह का आश्रय लेकर आते हैं। इसी को अवतरण

कहा जाता है। अवतरण के लिए जिस शरीर का आश्रय लिया जाता है उसी को उनका असली रूप समझने वाले लोग उन रूपों की प्रतिमाएँ बनाकर उनकी आराधना कर रहे हैं। अवतरण का समय समाप्त होते ही वे अपने असली रूप में चले जाते हैं। इस लिए उन देवताओं का असली रूप कोई नहीं जानता। परन्तु उन देवताओं की उत्पत्ति और विनाश भी ईश्वर के हाथ में होते हैं। इस लिए वे देवतागण भी ईश्वर के प्रारंभ के बारे में नहीं जानते।

मनुष्यों को सन्मार्ग दिखाकर मोक्ष की ओर चलाने के लिए ईश्वर ने मनुष्यों में से कुछ सत्पुरुषों का चयन करके उन्हें ऋषि या पैगम्बर के पद पर नियुक्त किया था। इस प्रकार नियुक्त ऋषियों के पास अपने प्रधान देवता श्री परमात्मा द्वारा वह अपना संदेश भेजता रहा। ऋषियों की यह परंपरा आदि पुरूष सूर्य अर्थात् आदित्य (शिव) से प्रारंभ हुई। इन ऋषियों को भी ईश्वर के प्रारंभ की जानकारी नहीं होती क्यों कि उनकी उत्पत्ति भी उसी ईश्वर के द्वारा की जाती है। इसी लिए उपर्युक्त (10: 2) श्लोक में उस ईश्वर को ''देवतओं का और महर्षियों का आदि'' कहा गया।

ईश्वर के अनुपम गुण

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।। **-10:3**

जो मनुष्य मुझे अजन्मा, अनादि और सम्पूर्ण लोकों का महान ईश्वर जानता है अर्थात दृढता से स्वीकार कर लेता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान है और (वह) सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।

उपर्युक्त श्लोक में ईश्वर से सम्बन्धित तीन प्रमुख गुणों को और उन पर विश्वास करने से होने वाले दो प्रमुख लाभों को बताया गया है। 1. अजन्म 2. अनादि 3. समस्त लोकों का ईश्वर

1. अजन्म

मनुष्य की भौतिक शुरुआत को जन्म कहते हैं। वीर्य बिंदु द्वारा माता के गर्भ में प्रवेश करके अनेक परिवर्तनों के बाद मनुष्य अपने असली रूप को प्राप्त करता है।

इस पूरी प्रक्रिया के लिए नौ महीने लगते हैं। अर्थात् उतने दिन वह माता के गर्भ में ही रहता है। जरा सोचिए, इतने असाधारण विश्व को बनाकर चलाने वाला विधाता क्या इस प्रकार की कमजोर दशाओं से गुजरने वाला हो सकता है? इसी लिए उन्हें ''अजन्म'' कहा गया। अगर हम मान भी ले कि उसका जन्म है तो क्या उसको जन्म देने वाले माता-पिता उससे महान नहीं बन जाएँगे? इस लिए वह किसी माता-पिता से उत्पन्न संतान नहीं बल्कि स्वयंभू है। इसी विषय को स्पष्ट करते हुए उपर्युक्त श्लोक में उसको ''अजन्म'' कहा गया।

2. अनादि

''आदि'' शब्द का अर्थ है ''प्रारंभ''। इसका विलोम शब्द है 'अनादि' अर्थात् ''जिसका प्रारंभ नही है''। भगवान को ''अनादि'' कहा गया क्यों कि जिसका प्रारंभ होता है उसका अंत भी होता है।

3. समस्त लोकों का ईश्वर

ईश्वर किसी एक जाति, मजहब या वर्ग के लिए नहीं होता। पृथ्वी या आकाश जैसे किसी एक स्थान तक भी वह सीमित नहीं हो जाता। आज लोगों में यह गलत विचार फैला हुआ है कि ईश्वर हिन्दुओं का भगवान है, यहोवा ईसाइयों के लिए और अल्लाह मुसलमानों के लिए। तो क्या सचमुच तीनों के लिए तीन अलग-अलग भगवान हैं? नहीं, वह सिर्फ एक है। उसको विभिन्न भाषाओं में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। यहाँ पर भिन्नता सिर्फ भाषा में है, भगवान के अस्तित्व में नहीं। इसी लिए उस भगवान के गुणों का वर्णन करते हुए उसको समस्त लोकों का सृजन करके, चलाने वाला ईश्वर कहा गया।

इस प्रकार इन तीनों गुणों के आधार पर अपने विश्वास को बनाने वाले के लिए दो प्रमुख लाभ बताए गए- 1. ज्ञानी बनेगा 2. समस्त पापों से मुक्त हो जाएगा।

1. सृष्टिकर्ता को पहचानने के कारण मनुष्य में अनेक विषयों का विकास होने लगता है। सबसे पहले वह अंध तथा मूढ विश्वासों से और दुराचारों से मुक्त हो जाता है। क्यों कि वह विश्वास करने लगता है कि ईश्वर की आज्ञा से ही संसार में सबकुछ चलता है और उसके जीवन में होने वाले लाभ तथा हानियों का निर्णय

भी वही ईश्वर लेता है। इस प्रकार अपने जीवन के हर विषय में वह अज्ञान युक्त सोच से बाहर निकलकर ''ज्ञानी'' बन जाता है।

2. पापों से मुक्त होने के लिए समाज में अनेक प्रकार के उपाय फैले हुए हैं- मजहब को बदलना, भगवान के नाम पर एक को छोडकर दूसरे पर विश्वास रखना, वेष-भाषाएँ बदलना, दान देना, नदियों में डुबकियाँ लगाना, मंदिर-चौराहे बनवाना आदि कार्यों के पीछे यही उद्देश्य होता है कि पापों से मुक्ति मिलजाय। परन्तु भगवान कहता है कि उसको अजन्म, अनादि और समस्त लोकों का ईश्वर मानने से हमें अपने पापों से मुक्ति मिल जाएगी।

भगवान के कुछ और अनुपम गुण

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।। **–7:24**

बुद्धिहीन मनुष्य मेरे परम, अविनाशी और सर्वश्रेष्ठ भाव को न जानते हुए अव्यक्त मुझको मनुष्य की तरह शरीर धारण करने वाला मानते हैं

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।। **–9:4**

यह सब संसार मेरे निराकार रूप से व्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणी मुझमें स्थित हैं, परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ।

उपर्युक्त श्लोकों में ईश्वर की पहचान के कुछ और गुणों का वर्णन किया गया है- **1.** अविनाशी **2.** सर्वश्रेष्ठ **3.** प्रकृति से अलग **4.** अव्यक्त **5.** प्राणियों में स्थित न होने वाला।

1. अविनाशी

इस सृष्टि में सृजित हर वस्तु का नाश होता है। अगर प्राणी हो तो उसकी मृत्यु भी होती है। अर्थात् जन्म लेने वाले हर प्राणी को मृत्यु या विनाश अनिवार्य है। परन्तु ईश्वर तो अजन्म है, इस लिए उसकी मृत्यु भी नहीं होती।

2. सर्वश्रेष्ठ

समस्त सृष्टि में ईश्वर ही सर्वोपरि है। ऐसा कोई महान या विवेकशील अस्तित्व नहीं है जिसको हम उस ईश्वर से शक्तिशाली कह सकें। उसके समान सही निर्णय लेने वाला भी नहीं है। किसी भी विषय में विश्व के किसी भी अस्तित्व की तुलना हम उससे नहीं कर सकते। इस लिए वह ईश्वर समस्त सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ है।

3. प्रकृति से अलग

अकसर ऐसा होता है कि लोग भगवान के अस्तित्व को इस प्रकृति में रहने वाले जीवों में ढूँढने की कोशिश करते हैं। मनुष्य और उसकी तरह कमजोरियाँ रखने वाले अन्य प्राणियों को या उनके रूपों को भगवान बनाकर उनकी आराधना तथा उपासना करते हैं। परन्तु भगवान तो इस प्रकृति में वास करने वाला अस्तित्व नहीं है। वह तो इस प्रकृति से अलग रहता है जिसके लिए ''परम्'' शब्द का प्रयोग किया गया। ''परम्'' का अर्थ होता है इहलोक से अलग रहने वाला।

4. अव्यक्त

अव्यक्त से मतलब आँखों को व्यक्त न होने वाला। अर्थात् उस भगवान का रूप हमारी आँखों को व्यक्त होने वाला नहीं है। उसको किसी ने कभी देखा नहीं। इस प्रकार जिस भगवान को कभी किसी ने देखा ही नहीं उसके किसी रूप की कल्पना कोई कैसे कर सकता है? इस लिए भगवान की कल्पना करते हुए किसी रूप के चित्र या मूर्ति को नहीं बनाना चाहिए। भगवान ने स्वयं कहा कि वह अव्यक्त रूपवाला है।

5. प्राणियों में स्थित न होने वाला।

मनुष्य हो या कोई और जीव चाहे वह कितना ही शक्तिमान या श्रेष्ठ प्राणी ही क्यों न हो भगवान से उसकी बराबरी नहीं करनी चाहिए। भगवान इस प्रकृति में रहने वाला नहीं है। इस लिए सृष्टि के किसी भी प्राणी या चीज को भगवान नहीं बनाना चाहिए।

''संसार मेरे निराकार रूप से व्याप्त है'' से मतलब है कि इस संसार में जड और चेतन सभी पदार्थों का सृजन उसी विधाता ने किया है। इसी लिए उसको ''सृष्टिकर्ता'' कहा जाता है। विश्व का हर प्राणी उस पर आधारित है परन्तु वह किसी पर आधारित नहीं है। इसी कारण कहा गया कि ''सम्पूर्ण प्राणी मुझमें स्थित हैं, परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ।''

अनिर्देश्य

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्त पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्तयं च कूटस्थमचल ध्रुवम।।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।। **–12ः3-4**

और जो अपने इन्द्रिय-समूह को भली भाँति वश में करके चिन्तन में न आने वाले, सब जगह परिपूर्ण, देखने में न आनेवाले, निर्विकार, अचल, ध्रुव, अक्षर और अव्यक्त की तत्परता से उपासना करते हैं वे प्राणिमात्र के हितमें प्रीति रखने वाले और सब जगह समबुद्धिवालेमनुष्य मुझे ही प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त श्लोकों में बताए गए मुख्य विषय हैं- **1.** अनिर्देश्य **2.** इन्द्रियों को अव्यक्त **3.** चिन्तन में न आनेवाला **4.** निर्विकार **5.** अचल **6.** अक्षर **7.** सब जगह परिपूर्ण **8.** मुझे ही प्राप्त होते हैं।

1. अनिर्देश्य

किसी वस्तु या प्राणी के रूप का वर्णन हम तभी कर सकते हैं जब हम ने कमसे कम उससे सम्बन्धित किसी चित्र को देखा हो। बिना किसी जानकारी या ज्ञान के हम उस वस्तु के रूप की कल्पना तक नहीं कर सकते। इसी प्रकार ईश्वर के रूप को कोई भी निर्देशित नहीं कर सकता क्यों कि वह अव्यक्त है।

2. इन्द्रियों को अव्यक्त

इन्द्रियों को व्यक्त न होने से मतलब है कि हम भगवान को न तो हमारी आँखों से देख सकते हैं और न ही कानों से सुन सकते। नाक, जीभ और चर्म जैसे किसी भी इन्द्रिय से हम उसका अनुभव नहीं कर सकते।

3. चिन्तन में न आनेवाला

चिन्तन में न आने वाले से मतलब है कि हम कमसे कम अपने मन में सोच भी नहीं सकते कि भगवान का रूप किस प्रकार का होता है।

4. निर्विकार

विकारों से अर्थ है कमजोरियाँ। मनुष्य तथा संसार में रहने वाले अन्य प्राणियों में कई कमजोरियाँ होती हैं। जैसे परिश्रम करने पर थक जाना, चोट लगने पर दर्द होना, विश्राम लेना आदि। लेकिन भगवान को इस प्रकार की कोई कमजोरी नहीं होती।

5. अचल

चलन से अर्थ है एक स्थान को छोडकर दूसरे स्थान तक जाना। अपने कार्यों की पूर्ति के लिए इनसान को यह आवश्यक है कि वह स्थान बदलता रहे। परन्तु भगवान को किसी बडे से बडे कार्य के लिए भी चलन की आवश्यकता नहीं होती, उसकी एक आज्ञा ही काफी है। इस लिए उसको ''अचल'' कहा गया है।

6. अक्षर

अक्षर का अर्थ है नित्य रहने वाला। भगवान इस सृष्टि के प्रारंभ के पूर्व भी था, अब भी है और इसके अंत होने के बाद भी रहेगा। उसके अस्तित्व का कोई अंत नहीं है।

7. सब जगह परिपूर्ण

भगवान के सर्व व्यापी गुण का गलत अर्थ फैल गया है कि वह मनुष्यों में, पेडों में, पशु-पक्षियों में और अन्य सभी वस्तुओं में रहता है। परन्तु हमें यह जान लेना

चाहिए कि इन सब विषयों में भगवान का अस्तित्व नहीं बल्कि उसकी शक्ति फैली हुई होती है। गीताशास्त्र के 13:34 श्लोक में एक उदाहरण के द्वारा इस विषय को स्पष्ट किया गया कि जिस प्रकार सूर्य अपने स्थान पर रहकर संसार को प्रकाशित करता है उसी प्रकार ईश्वर भी अपने स्थान पर रहकर सारे विश्व को चलाता है।

इस प्रकार भगवान के इन गुणों को समझने वाले लोग ही असल में उसको पहचान सकते हैं।

8. मुझे ही प्राप्त होते हैं

''मुझे ही प्राप्त होते हैं'' - इस बात का अर्थ है उस ईश्वर को ही प्राप्त करना। ''येत्वक्षरम्'' शब्द में से ''येत'' का अर्थ है ''जो कोई'' और ''अक्षरम्'' का अर्थ है अविनाशी (मृत्यु को प्राप्त न करने वाला)। इस प्रकार उपर्युक्त सभी गुणों से ईश्वर की उपासना करने वाले मनुष्य उस ईश्वर को ही प्राप्त करेंगे यानी उसकी करुणा तथा अनुग्रह को प्राप्त करेंगे।

सर्वज्ञ

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयां समनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धाता रमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात।।

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम।।

– 8:9-10

जो सर्वज्ञ, अनादि, सबपर शासन करने वाला, सूक्ष्म से अत्यन्त सूक्ष्म, सबका धारण-पोषण करने वाला, अज्ञान से अत्यंत परे, सूर्य की तरह प्रकाश स्वरूप अर्थात ज्ञानस्वरूप ऐसे अचिन्त्य स्वरूप का चिन्तन करता है। वह भक्तियुक्त मनुष्य अन्त समय में अचल मनसे और योगबल के द्वारा भृकुटि के मध्य में प्राणों को अच्छी तरह से प्रतिष्ट करके उस परम दिव्य पुरुष को ही प्राप्त होता है।

उपर्युक्त श्लोकों में भगवान के अनेक गुणों का वर्णन किया गया है। जैसे -

1. सर्वज्ञ 2. पुराण पुरुष 3. सब पर शासन करने वाला 4. सूक्ष्म से अत्यंत सूक्ष्म 5. सबका धारण पोषण करने वाला 6. अचिन्त्य स्वरूप 7. सूर्य की तरह प्रकाश-स्वरूप 8. अज्ञान से अत्यंत परे

1. सर्वज्ञ

सर्वज्ञ का अर्थ है परिपूर्ण ज्ञान वाला और समस्त विषयों की खबर रखने वाला। ईश्वर सर्वज्ञ है। विश्व में कब कहाँ क्या होना है इसका निर्णय वही करता है। ऐसी कोई चीज नहीं है जो उसकी जानकारी से बाहर है। हर पेड से झडने वाले हर पत्ते की खबर वह रखता है। यहाँ तक कि अमावस्या के अंधेरे में काले पत्थर के नीचे चलने वाली काली चींटी के पैरों की आहट भी वह सुन सकता है। मनुष्य की बातें और कामों की ही नहीं बल्कि उसके हृदय के विचारों की जानकारी भी ईश्वर के पास होती है। इस लिए उसको सर्वज्ञ कहा गया है।

2. पुराण पुरुष

पुराण का अर्थ है अति पुरातन। जिस भगवान का परिचय गीताशास्त्र में अजन्म और अव्यक्त रूप से किया गया है वह कोई नया नहीं बल्कि वही पुरातन अस्तित्व है जिसके बारे में गीताशास्त्र से पूर्व आने वाले ग्रंथ यानी वेदों और उपनिषदों में बताया गया था। इस लिए उसको पुराण पुरुष कहा गया है।

3. सब पर शासन करने वाला

सारे विश्व का सृजन करके उसको अनुशासन युक्त चलाने वाला सिर्फ भगवान ही है। इस विश्व में होने वाले उत्पत्ति और विनाश उसी के शासन से चलते हैं।

4. सूक्ष्म से अत्यंत सूक्ष्म

अणु जैसी सूक्ष्म वस्तु को हम साधारण दृष्टि से देख नहीं सकते। भगवान को सूक्ष्म से भी अत्यंत सूक्ष्म कहने का अर्थ है कि उसको हमारी आँखों से देखना असंभव है।

5. सबका धारण पोषण करने वाला

संसार विभिन्न प्रकार के जीव गणों से भरा हुआ है। आसानी से न दिखाई देने वाले सूक्ष्म जीवों से लेकर बडे से बडे हाथी, जिराफ जैसे लाखों प्रकार के प्राणी यहाँ रहते हैं। इनमें से विचक्षण ज्ञान वाला मनुष्य हो या कोई अन्य प्राणी सबके खान-पान की व्यवस्था भगवान ही करता है। प्रत्येक प्राणी उसी पर आधारित है। वही इन सबका धारण-पोषण करने वाला है।

6. अचिन्त्य स्वरूप

चिन्तन में न आने वाले से मतलब है कि हम कमसे कम अपने मन में सोच भी नहीं सकते कि भगवान का रूप किस प्रकार का होता है।

7. सूर्य की तरह प्रकाश-स्वरूप

ईश्वर के अव्यक्त रूप के वर्णन का यह एक उदाहरण है। सूर्य के प्रकाश को हम सीधे देख नहीं सकते। भगवान को तो करोड सूर्यों के प्रकाशवाला कहा जाता है। तो इसका अर्थ यही हुआ ना कि हम भगवान को देख नहीं सकते और उसको देखने के लिए इहलोक में हमारी इन आँखों की शक्ति काफी नहीं है। यहाँ पर एक और अर्थ भी निकलता है कि जिस प्रकार सूर्य संसार में अपने प्रकाश का प्रसार करता है उसी प्रकार भगवान भी सारे विश्व का पालन-पोषण करता है।

8. अज्ञान से अत्यंत परे

शास्त्रों में बताया जाता है कि समस्त सृष्टि का सृजन करने वाले एकैक ईश्वर के बारेमें संपूर्ण ज्ञान को प्राप्त करना ही असली ज्ञान है। क्यों कि ईश्वर ही सर्वोच्च ज्ञान रखने वाला है। अनन्त है और विवेकशील है। मनुष्य को होने वाली सारी कमजोरियों से परे है। किसी के दबाव में जाना, अनुराग, तरफदारी आदि गुण उसमें नहीं होते। उसकी दया और करुणा की कोई सीमा नहीं होती। विश्व के सभी प्राणियों की जरूरतें वह पूरी करता है। उनका जीवन-मरण, उनकी आजीविका, उपयुक्त पर्यावरण, मौसम इत्यादि विषयों की विवेकपूर्ण व्यवस्था करने वाला महान ज्ञानी वह ईश्वर ही है। अज्ञान नाम की चीज उसके आस-पास भी नहीं भटकती।

मत्तः परतरं नान्यत्किन्चिदस्ति धनन्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। **-7:7**

हे धनंजय। मेरे सिवाय (इस जगत का) दूसरा कोई किंचिन्मात्र भी (कारण तथा कार्य) नहीं है। (जैसे सूतकी) मणियाँ सूतके धागे में (पिरोयी हुई होती हैं) ऐसे ही यह सम्पूर्ण जगत मेरे में (ही) ओतप्रोत है।

''मेरे सिवाय दूसरा कोई भी नहीं'' से मतलब है कि उसके समान या उससे बढकर इस विश्व में कोई और नहीं है। मणियों के हार में मणियाँ तो दिखाई देती हैं परन्तु जिस धागे के आधार पर उनको गूंथा जाता है वह दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार जो ईश्वर समस्त विश्व का आधार है वह हमें दिखाई नहीं देता क्यों कि वह अव्यक्त रूपी है। इस लिए हमें इस विश्व की अद्‌भुत व्यवस्था को देखकर इसको चलाने वाले ईश्वर की शक्ति को पहचानना चाहिए और उस पर विश्वास रखना चाहिए।

प्राणियों का आधार

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः।। **-9:5**

प्राणी मुझ में स्थित नहीं हैं। मेरे इस ईश्वर - सम्बन्धी योग-सामर्थ्य को देख। सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाला और प्राणियों का धारण, भरण-पोषण करने वाला मेरा स्वरूप उन प्राणियों में स्थित नहीं है।

संसार का हर प्राणी ईश्वर पर आधारित है, परन्तु वह किसी पर आधारित नहीं। कौन उसकी बराबरी कर सकता है? प्राणियों को जन्म प्रदान करना तथा उनके पालन-पोषण की व्यवस्था के द्वारा ईश्वर उनके निकट आता है। इसी को ईश्वर-सम्बन्धी योग-सामर्थ्य कहा गया है। क्यों कि ईश्वर के अलावा इस कार्य को कोई और कर नहीं सकता। परन्तु संसार में अकसर ईश्वर की तुलना मनुष्य या मनुष्य से भी कमजोर प्राणियों से की जाती है और उन प्राणियों को भगवान बनाकर उनकी

पूजा भी होती है। लेकिन ईश्वर इन प्राणियों पर आधारित होने वाला नहीं बल्कि उनका सृजन करके उनका पालन-पोषण करने वाला आधार है। मनुष्य की कमजोर सोच कहती है कि ईश्वर उसमें भी है और अन्य सभी प्राणियों में भी स्थित है। परन्तु इस विचार को असत्य बताते हुए भगवान ने कहा कि वह ''उन प्रणियों में स्थित नहीं हैं''।

क्षर-अक्षरों से भी अलग

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोक्षर उच्यते।।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।। **–15:16-17**

इस संसार में क्षर (नाशवान) और अक्षर (अविनाशी) ये दो प्रकार के ही पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर क्षर और जीवात्मा अक्षर कहा जाता है। उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो ''परमात्मा''- इस नामसे कहा गया है। (वही) अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर (सबका) भरण-पोषण करता है।

यस्मात्क्षरमतीतो हमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।। **–15:18**

कारण कि मैं क्षर से अतीत हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ, इस लिए लोकमें और वेद में पुरुषोत्तम (नामसे) प्रसिद्ध हूँ।

क्षर से मतलब है नाश होने वाला और अक्षर इसका विलोम शब्द होता है जिसका अर्थ है अविनाशी या मृत्यु को प्राप्त न करने वाला। मनुष्य की यह देह अशाश्वत है जिसकी अवधि कुछ दिनों तक सीमित होती है और उसके बाद उसका नाश हो जाता है। मनुष्य से अतीत एक और सृष्टि है जिसको देवता या देवगण कहते हैं। उनका सृजन भी ईश्वर द्वारा ही हुआ है और अगर वह चाहे तो उनका नाश भी कर सकता है। परन्तु मनुष्य की तरह इन देवताओं को जन्म और मृत्यु नहीं होते। उनकी

उत्पत्ति ईश्वर से ही हुई है और उनका हर कार्य उसकी आज्ञा के अनुसार ही होता है। नाश होने वाले क्षरों को और अविनाशी अक्षरों को - इन सबका सृजन करके भरण-पोषण करने वाला सृष्टिकर्ता ही ईश्वर है, जो 1. समस्त सृष्टि का नाश होने पर भी रहने वाला अविनाशी है और 2. सारे विश्व का शासन करके पालन-पोषण करता है। क्षर - अक्षरों से वह अतीत है, अलग है। सबसे उत्तम है और विवेकशील है। इस लिए गीताशास्त्र में की गई उसकी प्रस्तावना कोई नई बात नहीं हुई। अनेक महापुरुषों तथा महात्माओं की वाणी में मुखरित होने के कारण वह लोगों में लोकप्रिय और वेदों में सर्वोपरि बना हुआ है। इस लिए शास्त्र पर यकीन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह मानना चाहिए कि वह सर्वोपरि है।

प्रभव तथा प्रलय

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।। **–7:6**

सम्पूर्ण प्राणियों के उत्पन्न होने में अपरा और परा- इन दोनों प्रकृतियों का संयोग ही कारण है- ऐसा तुम समझो। मैं सम्पूर्ण जगत का प्रभव तथा प्रलय हूँ।

यहाँ पर अपरा प्रकृति से मतलब है शरीर और परा प्रकृति का अर्थ है आत्मा। इन दोनों के संयोग से ही सम्पूर्ण प्राणियों का उत्पादन होता है। किन्तु समस्त प्राणियों का उत्पादन (प्रभव) हो या विनाश (प्रलय) उस एकैक ईश्वर के हाथ में ही होते हैं।

मनुष्य के समस्त कर्मों का गवाह

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम।। **–9:18**

गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, आश्रय, सुहृद, उत्पत्ति, प्रलय, स्थान, निधान (भण्डार) तथा अविनाशी बीज भी मैं ही हूँ।

1. गति (परम लक्ष्य)

मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य है अपने भगवान को पहचानकर उसकी आराधना करना ताकि इसके द्वारा वह भयानक नरक के बंधन से बचकर सदा रहने वाले स्वर्ग को यानी मोक्ष को प्राप्त कर सके।

2. भर्ता (भरण करने वाला)

अपनी परिधि के एक छोटे से परिवार को सँभालने के लिए मनुष्य अनेक परेशानियाँ झेलता है। परन्तु ईश्वर अति सूक्ष्म अणु से लेकर ग्रहों और नक्षत्रों तक की सारी विश्व-व्यवस्था का और उसमें रहने वाले 84 लाख प्रकार के जीवों का भरण करने वाला होता है।

3. प्रभु

समस्त जीवों का सृजन करके उनका पालन-पोषण करने वाला, फिर अंत में उनका नाश करके प्रलय के बाद फिर से उन्हें जिन्दा उठाने वाला वही ईश्वर है।

4. साक्षी (गवाह)

मनुष्य के द्वारा किए जाने वाले हर कर्म के आचरण का गवाह भगवान ही है। अंधेरे में हो या उजाले में, रहस्य हो या खुले आम- हर मनुष्य की प्रत्येक बात और काम, यहाँ तक कि मन के विचारों को भी वह जानता है और इन सबके लिए वही खुद गवाह बना रहता है।

5. निवास

ईश्वर हर प्राणी के हृदय की बात जानता है। उनकी हर बात, हर काम और हर सोच की खबर रखता है। इतना ही नहीं परन्तु सबके लिए वह आधार भी बना हुआ है। इसी लिए उसको निवास कहा गया।

6. आश्रय

मनुष्य के जीवन की शुरुआत से लेकर अंत तक भगवान की अनेक मेहरबानियाँ देखने को मिलती हैं। भगवान ने उसको जीवन प्रदान किया और उसके लिए खाने-

पीने की व्यवस्था की और साथ-साथ जीवन को सही मार्ग पर चलाकर सफल बनाने के लिए आवश्यक शास्त्रों को भी उसके पास भेजा। इस लिए भगवान से बढकर मनुष्य को आश्रय देने लायक और कोई नहीं है। तथापि मनुष्य को उस भगवान की ही शरण में जाना चाहिए जो सर्व शक्तिमान है और सम्पूर्ण विश्व पर अपने शासन को चलाता है।

7. सुहृद

मनुष्य चाहे अपने विधाता को पहचाने या नहीं, उनकी शरण में जाए या तिरस्कार करे, उनकी बराबरी अन्यों से करके उन्हें भगवान बना लें या नास्तिक बनकर जीवन बिता लें- हर हाल में हर व्यक्ति के लिए खान-पान की व्यवस्था वह कर देता है। भगवान हर तरह से मनुष्य की भलाई ही चाहता है क्यों कि सबको वह सन्मार्ग की ओर जाने का रास्ता दिखाता है।

8. उत्पत्ति, प्रलय, स्थान

समस्त सृष्टि की उत्पत्ति करने वाला और समस्त जीवों के लिए उनके जीवन-काल को निर्धारित करने वाला और फिर उन्हें मृत्यु प्रदान करने वाला ईश्वर वही है।

9. निधान तथा अविनाशी

ईश्वर हमेशा सर्वश्रेष्ठ और महान शक्तिमान ही बना रहता है। उसका कोई नाश नहीं है। सृष्टि के पहले भी वह था, अब भी है और भविष्य में सारी सृष्टि के नाश के बाद भी वह रहेगा।

इस प्रकार समस्त सृष्टि का सृजन करने वाले ईश्वर यानी भगवान के गुणों को हमें पहचानना चाहिए। आइए आगे देखते हैं कि उस भगवान की शक्ति तथा सामर्थ्य क्या हैं -

मनुष्य के विभिन्न गुणों की वजह

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोभावो भयं चाभयमेव च।।

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।। **–10:4-5**

बुद्धि, ज्ञान, असम्मोह, क्षमा, सत्य, दम, शम, तथा सुख, दुःख, उत्पत्ति, विनाश, भय, अभय और अहिंसा, समता, सन्तोष, तप, दान, यश और अपयश- प्राणियों के ये अनेक प्रकार के अलग-अलग भाव मुझसे ही होते हैं।

समस्त सृष्टि का सृजन करने वाले सर्वश्रेष्ठ और विवेकशील अक्षर परब्रह्मा ने समस्त जीवों में से मनुष्य को बहुत ही विलक्षण बनाया है। उसने मनुष्य में कई विशेष गुण भर दिए जो अन्य जीवों में नहीं पाये जाते। उन गुणों के अध्ययन से हम उन्हें प्रदान करने वाले सृष्टिकर्ता की शक्ति का अन्दाजा लगा सकते हैं।

सोचने की बुद्धि, विचक्षणा करने का ज्ञान, खुद को भुला देने वाले मोह से दूर रहना, कष्टों तथा नष्टों को सहन कर सकने वाला सब्र, हर हाल में सच्चाई पर स्थिर रहना, बाह्य और अंतर इन्द्रियों को वश में रखना, खुशी और गम तथा सुख और दुःख, जन्म, मृत्यु और खतरे के समय होने वाला भय, समस्याओं का सामना करने की हिम्मत, दूसरों को कष्ट न देना, सबको समान दृष्टि से देखना, हक की चीज कम मिलने पर भी निराश न होकर संतुष्ट रहना, दृढ चित्त बनकर परिश्रम करना, अपने स्वार्थ को भूलकर दूसरों की सहायता के लिए तथा समाज की भलाई के लिए कार्य करना, ईश्वर के डरसे करने वाले कार्यों से होने वाला नाम व सम्मान और उसके विपरीत रहने से होने वाली बेइज्ज़ती- ये सारे गुण भगवान द्वारा ही मिलते हैं।

प्राकृतिक विषयों का प्रदाता

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।। **–9:19**

हे अर्जुन! (संसार के हित के लिए) मैं ही सूर्य रूप से तपता हूँ, मैं ही जल को ग्रहण करता हूँ और (फिर उस जल को) मैं ही वर्षा रूप से बरसा देता हूँ। (और तो क्या कहूँ) अमृत और मृत्यु तथा सत और असत भी मैं ही हूँ।

1. तपन

समस्त प्राणियों के जीवन के लिए सूर्य की गर्मी और प्रकाश अत्यंत आवश्यक है। सूर्य की रश्मि से ही खाद्य पदार्थ बनते हैं। पेड-पौधों की हरियाली और मानव शरीर में रक्त के प्रसरण के लिए तापमान अत्यंत आवश्यक है। इतने महत्वपूर्ण गर्मी और प्रकाश को प्रदान करने वाले सूर्य की उत्पत्ति भी ईश्वर द्वारा ही हुई है।

2. वर्षा को रोकना तथा बरसाना

वन्ध्या से उर्वरा बनने के लिए पृथ्वी को वर्षा के द्वारा जीवनदान मिलता है। यह वर्षा भी आवश्यकता के अनुसार ही होती है। तो क्या इस वर्षा का होना या रुक जाना मनुष्य के हाथ में है? बिलकुल नहीं। इस लिए भगवान कहता है कि ये दोनों कार्य सिर्फ उसके बस में होते हैं।

3. अमृत और मृत्यु

मनुष्य के साथ-साथ हर प्राणी के लिए इस संसार में जीवन काल निर्धारित है। निर्धारित समय के बाद उसकी मृत्यु के लिए एक पल का भी आगे-पीछे नहीं होता। इस प्रकार मनुष्य का जीवन-मरण दोनों ईश्वर के हाथ में ही होते हैं।

4. सत् - असत्

सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म जैसे सभी विषयों की जानकारी भगवान द्वारा ही मिलती है।

उपर्युक्त श्लोकों में बताए गए गुण, अधिकार, शक्ति तथा कौशल जिस अस्तित्व में होते हैं वही हमारा भगवान यानी ईश्वर है और हमें उसी की आराधना करनी चाहिए। दूसरों को भी इस प्रकार के अधिकार रखने वाले मानकर उनकी आराधना करने से कोई लाभ नहीं होता और बिना लाभ के मनुष्य कोई कार्य करता नहीं। बिना लाभ के कार्य करना तो मनुष्य का स्वभाव ही नहीं है। इस लिए आगे हम देखेंगे कि समस्त सृष्टि का सृजन करने वाले ईश्वर की आराधना से हमें इस संसार में होने वाले लाभ क्या हैं।

समर्पण किसे और क्यों?

सब कुछ उस भगवान को ही अर्पित करना चाहिए

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्तया प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।। **-9:26**

जो भक्त, पत्र, पुष्प, फल, जल आदि को प्रेमपूर्वक मेरे अर्पण करता है, उस (मुझमें) तल्लीन हुए अन्तःकरण वाले भक्त के द्वारा प्रेमपूर्वक दिए हुए उपहार (भेंट) को मैं खा लेता हूँ अर्थात् स्वीकार कर लेता हूँ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। **-9:27**

हे कुन्तीपुत्र। तू जो कुछ करता है, जो कुछ भोजन करता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है और जो कुछ तप करता है, वह (सब) मेरे अर्पण कर दे।

पत्ता, फूल, फल, पानी- वस्तु चाहे जो भी हो अनन्य भक्ति और श्रद्धा के साथ समस्त सृष्टि का सृजन करने वाले ईश्वर को ही उसका समर्पण किया जाना चाहिए। अन्तःकरण अर्थात् मन या मस्तिष्क के किसी भी कोने में भगवान के अलावा किसी

और की सोच तक नहीं होनी चाहिए। यहाँ पर कहा गया है कि अव्यक्त रूप वाले उस भगवान को जो भी भक्त अत्यंत भक्ति और श्रद्धा के साथ अर्पण देता है उसको वह स्वीकार कर लेगा। तो अब उस अव्यक्त रूप वाले भगवान को हम समर्पण कैसे दे सकते हैं? और उसको वह कैसे स्वीकार कर सकता है? यहाँ पर समर्पण करने से मतलब होता है कि सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ की विशेषता को पहचानकर उसको बनाने वाले सृष्टिकर्ता यानी भगवान की महानता की प्रशंसा और स्तुति करनी चाहिए। स्वीकार करने का अर्थ है अनुभव से संबंधित आनंद की अनुभूति को प्राप्त करना। भगवान को इस बात की खुशी होगी कि उसका भक्त उसे देखे बिना सिर्फ उसकी सृष्टि की महानता की झलक से ही उसको पहचान पा रहा है। हमारे हर काम और अनजाम को भगवान की ओर से होने वाला मानना ही ''सब कुछ उसको अर्पण करना'' है। हर बात में उसीका स्मरण करते हुए आगे बढना है। इसी को ''समर्पण'' कहते हैं।

भोक्ता और स्वामी

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्वेनातश्च्यवन्ति ते।। **-9:24**

क्यों कि सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ, परन्तु वे मुझे तत्व से नहीं जानते, इसीसे उनका पतन होता है।

''सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी मैं ही हूँ''- इस वाक्य का अर्थ होता है कि हम सम्पूर्ण कार्यों को भगवान की आज्ञा के अनुसार करें और उसकी स्तुति करते हुए यह अटूट विश्वास बनाए रखें कि ये सारे कार्य उस भगवान की कृपा से ही पूर्ण बनते हैं। समस्त सृष्टि को बनाने वाला ईश्वर ही इसका पालन-पोषण करने वाला स्वामी है। उत्पत्ति और विनाश सब कुछ उसी के हाथ में होते हैं। ऐसे भगवान को न पहचान पाने के कारण ही लोग यज्ञ-याग जैसे पुण्य कार्यों को उसे छोडकर अन्यों को अर्पण कर रहे हैं। इसी लिए उपर्युक्त श्लोक में कहा गया कि भगवान को वास्तव तत्व से न जानने के कारण ही लोगों का पतन हो रहा है, अर्थात् वे सन्मार्ग से हटकर गुमराही की ओर जा रहे हैं।

मनुष्यों से ईश्वर का सम्बन्ध

सबके प्रति समान दृष्टि रखने वाला

समोहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मथि ते तेषु चाप्यहम्।। **–9:29**

मैं सम्पूर्ण प्राणियों में समान हूँ। उन प्राणियों में न तो कोई मेरा द्वेषी है और कोई प्रिय है। परन्तु जो प्रेमपूर्वक मेरा भजन करते हैं, मुझमें हैं और मैं भी उनमें हूँ।

भगवान की दृष्टि में सभी प्राणी समान ही है। परन्तु यहाँ पर प्राणियों से मतलब है मनुष्य। भगवान न तो किसी वर्ग से द्वेष करता है और न ही किसी से प्रेम। उसके लिए सब बराबर हैं और मनुष्यों की जीवन-व्यवस्था ही इसका एक बडा उदाहरण है। कोई भगवान की असलियत को पहचानते हुए मानता है कि वह एक है, अव्यक्त है और जन्म या मृत्यु प्राप्त न करने वाला है। कोई दूसरों को भगवान बनाकर उनकी पूजा करने लगता है तो कोई कहता है कि भगवान है ही नहीं। फिर भी भगवान इन सबको आजीविका तथा स्वास्थ्य जैसी चीजें प्रदान करने में कोई अन्तर नहीं दिखाता। यहाँ पर समानता से मतलब होता है कि जीवन को आगे बढाने के लिए आवश्यक सामग्री तथा मुक्ति-मार्ग पर चलाने वाले ज्ञान को प्रदान करने के संबन्ध में भगवान सबको समान दृष्टि से देखता है। परन्तु उसके अनुग्रह सबके लिए समान नहीं होते।

कोई गरीब होता है तो कोई अमीर, किसी के पास अधिकार होता है तो किसी को साधारण जीवन। आखिर ये सारी असमानताएँ हैं क्यों? पहला कारण है- संसार के सभी कार्यों का निर्वाह सुचारु रूप से चलाने के लिए। क्यों कि जब सभी मनुष्य अधिकारी और अमीर बनकर रहेंगे तो निम्न वर्ग के कार्य कौन करेगा? इसी लिए जहाँ पर एक अफसर हो वहाँ पर एक चपरासी भी होना चाहिए। असमानता का दूसरा कारण है ''परीक्षा''। मनुष्य के जीवन में अनेक उतार-चढाव होते हैं। संपत्ति, अधिकार, गरीबी- हालात चाहे जो भी हो मनुष्य को हमेशा इस बात की परीक्षा होती है कि वह कृतज्ञता दिखाता है या कृतघ्न बन जाता है। मनुष्य को अपना जीवन-लक्ष्य यानी मुक्ति या मोक्ष को प्राप्त करने के मार्ग को जानकर स्वर्ग की सुविधाओं को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए अनन्य भक्ति की आवश्यकता है। यहाँ पर भक्ति से मतलब जप या ध्यान में बैठना नहीं बल्कि हर कार्य में भगवान की आज्ञा का पालन करना है। ऐसे भक्त पर भगवान की कृपा हमेशा रहती है।

उदाहरण के लिए, एक पुत्र अपने माता-पिता के प्रति अपार स्नेह को व्यक्त करता है और उनके आगे हमेशा हाथ बाँधकर खडा रहता है। परन्तु उनकी किसी भी आज्ञा का पालन नहीं करता। एक और पुत्र है जो अपने माँ-बाप के द्वारा बताए गए हर कार्य को पूर्ण करता है। तो इन दोनों में से अपने माँ-बाप के प्रति असली भक्ति तथा श्रद्धा रखने वाला पुत्र कौन है? इन दोनों में से किसके प्रति माँ-बाप अधिक प्रेम रखते हैं? निश्चय ही दूसरे पुत्र के प्रति जो उनकी हर आज्ञा का पालन करता है।

इसी प्रकार भगवान की करुणा तथा प्रेम का पात्र बनने के लिए उसकी हर आज्ञा का पालन करना जरूरी है।

ईश्वर की आराधना से होने वाले इह-पर लोकों के लाभ

योगक्षेम वहन करता है

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। **-9:22**

जो अनन्य भक्त मेरा चिन्तन करते हुए (मेरी) भली-भाँति उपासना करते हैं (मुझमें) निरन्तर लगे हुए उन भक्तों का योगक्षेम (अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा) मैं वहन करता हूँ।

भगवान न तो मनुष्य रूप में रहता है और न ही किसी अन्य प्राणी के रूप में। अनन्य भक्ति का मतलब होता है कि हम उसको अव्यक्त रूप मानकर हमेशा उसका ध्यान करें। उसकी हर आज्ञा का पालन करें। हर उस बात से दूर रहे जिसको उसने मना किया है। इस बात का हमेशा ख्याल रहे कि हमारे हर काम पर वह नजर रखता है और उसको संचित करता है। इसी ख्याल को ''निष्ठा'' कहते हैं। भगवान स्वयं कहता है कि इस प्रकार के निष्ठावान लोगों के योगक्षेमों का वहन वह खुद करता है। योग का अर्थ है मिलाना अर्थात् भगवान हमें उन चीजों से मिलाता है जो हमारे पास नहीं है। जैसे- शाँति, संपत्ति इत्यादि। और क्षेम का अर्थ है बचाना। यानी जो नहीं है उसको कमाना और जो पहले से है उसको बचाना- ये दोनों बातें मनुष्य के बस में नहीं होतीं बल्कि भगवान द्वारा ही ये संभव हैं। परन्तु इसके लिए हमें उस एकैक ईश्वर का ही ध्यान करते हुए उसी के प्रति निष्ठा रखनी चाहिए।

साधु बनेगा

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवस्तितो हि सः।। **-9:30**

अगर कोई दुराचारी से दुराचारी भी अनन्य भक्त होकर मेरा भजन करता है (तो) उसको साधु ही मानना चाहिए। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।

प्राकृतिक दुर्बलता के कारण मनुष्य चाहे कितना ही दुराचारी क्यों न हो अगर वह अपने ईश्वर को सही प्रकार से पहचानकर उसी की आराधना करते हुए उसकी आज्ञाओं के अनुसार विधि-निषेधों का पालन करेगा तो उपर्युक्त श्लोक के अनुसार वह सत्पुरुष ही कहलाएगा। अकसर हम देखते हैं कि जो इनसान एकेश्वर को छोडकर अन्यों की आराधना करने लगता है उसकी मानसिक स्थिति एकदम अस्थिर रहती है। शंका और संदेहों से भरा हुआ ऐसा इनसान दिन-दिन अपना भगवान बदलते हुए सुख और शान्ति रहित जीवन बिताता है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने सनातन धर्म को छोडकर अन्य धर्मों को स्वीकार कर लेते हैं। आजकल हिन्दू धर्म में हो रहे मजहबी परिवर्तन का यही एक प्रमुख कारण है।

एकैक सृष्टिकर्ता पर मन लगाकर उसकी आराधना करने वाला व्यक्ति स्थिर मनोनिश्चय वाला बनेगा और तनाव तथा संघर्षों से दूर रहकर शान्त जीवन बिताएगा।

असली भक्त का पतन नहीं होता

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।। **-9:31**

वह तत्काल (उसी क्षण) धर्मात्मा हो जाता है (और) निरन्तर रहने वाली शान्ति को प्राप्त हो जाता है। हे कुन्तीनन्दन। मेरे भक्त का पतन नहीं होता- (ऐसी तुम) प्रतिज्ञा करो।

अकसर हम देखते हैं कि दुराचारी मनुष्य में परिवर्तन के लिए बहुत समय लगता है। पहले उसकी मानसिक स्थिति को अपनी बुराइयों के कारण होने वाली हानियों को मसझने लायक बनाना पडता है। फिर उसके बाद उन बुराइयों से होने वाले शारीरिक तथा मानसिक नष्टों को समझाकर उनके प्रति उसके मन में भय उत्पन्न करना पडता है। उसी प्रकार उन बुराइयों से दूर रहने से होने वाले लाभ, जैसे मन की शान्ति, समाज में इज्जत, स्वास्थ्य आदि विषयों को समझाना पडता है। अन्ततः हमारा यह प्रयत्न तभी सफल बनेगा जब वह व्यक्ति परिवर्तन के लिए तैयार हो। अगर परिवर्तन आएगा तो भी वह थोडा-थोडा ही होगा। परन्तु उपर्युक्त श्लोक में इसके विपरीत कहा गया है।

जो भी व्यक्ति अपने सृष्टिकर्ता ईश्वर को पहचानकर उसकी आज्ञाओं के अनुसार जीवन बिताएगा उसमें तुरन्त परिवर्तन आ जाएगा। समस्त दुराचारों को त्याग देगा। अब हमारे मन में शंका उत्पन्न हो सकती है कि यह परिवर्तन कितने दिनों तक स्थिर रहेगा। गीता शास्त्र में तो प्रतिज्ञा करके मजबूती से कहने को कहा गया कि भगवान को सही प्रकार पहचानने वाले असली भक्त का कभी पतन नहीं होता।

जाति-धर्म से असंबद्ध उच्च स्थान

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य योपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परां गतिम्।। **-9:32**

हे पृथानन्दन जो भी पापयोनिवाले हों (तथा जो भी) स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र (हों), वे भी सर्वथा मेरे शरण होकर निःसन्देह परम गति को प्राप्त हो जाते हैं।

एकेश्वर को पहचानकर, उसकी आराधना करते हुए उसी की आज्ञाओं के अनुसार अपना जीवन बिताने वाला मनुष्य चाहे वैश्य हो या शूद्र, स्त्री हो या पुरुष प्रत्येक व्यक्ति को अपने जाति या धर्म से असंबद्ध सर्वोच्च स्थान ही प्राप्त होगा।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।। **-9:33**

(जो) पवित्र आचरण करने वाले ब्राह्मण और ऋषिस्वरूप क्षत्रिय भगवान के भक्त हों, (वे परमगति को प्राप्त हो जायँ) इस में तो कहना ही क्या है। इस लिए इस अनित्य (और) सुखरहित शरीर को प्राप्त करके (तू) मेरा भजन कर।

यहाँ पर ब्राह्मण शब्द का प्रयोग जाति के आधार पर नहीं किया गया। ब्राह्मण से मतलब है ब्रह्मज्ञान रखनेवाला। अर्थात् सृष्टिकर्ता अक्षर परब्रह्मा को पहचानकर उसी को परमगति मानते हुए उसकी आज्ञाओं का पालन करने वाले को ब्राह्मण कहते हैं। सामाजिक दुराचारों को दूर करते हुए एकेश्वर की उपासना की ओर लोगों को चलाने वाले को ऋषि कहते हैं। उनके उपदेशों को समझकर ईश्वर की आराधना करते हुए आचरण करने वाले भक्तों के लिए खुशियाँ ही खुशियाँ हैं। वे इस संसार में भी शान्ति को प्राप्त करेंगे और परलोक में भी सदा रहने वाली स्वर्ग की सुविधाएँ यानी मोक्ष को प्राप्त करेंगे। इस अनित्य और सुखरहित लोक में हमें हमेशा उस ईश्वर की आराधना करते हुए जीवन बिताना चाहिए।

ईश्वर का अनुग्रह मिलेगा

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।। **-9:34**

तू मेरा भक्त हो जा, मुझमें मनवाला हो जा, मेरा पूजन करने वाला हो जा (और) मुझे नमस्कार कर। इस प्रकार अपने आपको (मेरे साथ) लगाकर मेरे परायण हुआ (तू) मुझे ही प्राप्त होगा।

उपासना सिर्फ समस्त सृष्टि का सृजन करने वाले भगवान की ही की जानी चाहिए। इस में और किसी को शामिल नहीं किया जा सकता। भगवान से किसी और की तुलना या बराबरी नहीं करनी चाहिए। इसी लिए उपर्युक्त श्लोक में इस बात पर जोर दिया गया कि सब कुछ उस भगवान को ही अर्पित किया जाय। मन में सोच और भक्ति उसी की होनी चाहिए। पूजा हो या कोई भी उपासना, सिर्फ उस भगवान की ही करनी चाहिए। यहाँ तक कि नमस्कार भी उसी को करना चाहिए। ऐसा करने वाला भक्त ही उस भगवान के अनुग्रह का पात्र बनेगा।

ज्ञान - सिद्धि प्राप्त होगी

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।। **-18:46**

जिस परमात्मा से सम्पूर्ण प्राणियों की प्रवृत्ति (उत्पत्ति) होती है (और) जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, उस परमात्मा का अपने कर्म के द्वारा पूजन करके मनुष्यमात्र सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

यहाँ पर अपने कर्म से मतलब है स्वयं परिशीलन करके सोच विचार करना कि प्राणियों की उत्पत्ति आदि कार्य कैसे संपन्न हो रहे हैं। स्त्री-पुरुष के मिलन से एक सूक्ष्म जीव अंडे में प्रवेश करता है। क्रमशः उसके रक्त और माँस बनते हैं। फिर उसके बाद हड्डियाँ, माँसपेशियाँ तथा हाथ, पैर, सिर आदि अवयव बनते हैं। इस प्रकार नौ महीनों में एक देखने लायक आकार का निर्माण होता है। पशु-पक्षी इत्यादि प्राणियों का निर्माण भी कुछ ऐसा ही है। परन्तु इन सबको बनाने वाला विधाता कौन है? सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव को एक सुंदर आकार में बदलने का विवेक किसको है? विभिन्न आकारों को विभिन्न रंगों में अत्यंत आकर्षक रूप प्रदान करने वाला सृष्टिकर्ता कौन है?

विश्व में **84** लाख प्रकार के प्राणी हैं। अनेक प्रकार के जीवगण, पेड-पौधे, नदियाँ तथा सागरों से भरी हुई भूमि, भूमि जैसे अनेक ग्रह, इन सबको प्रकाशित करने वाला सूर्य, नक्षत्र और उनके पीछे का नीलाकाश- बेहद खूबसूरती से सजाए गए इस अद्‌भुत विश्व का सृजन करने वाला सृष्टिकर्ता कौन है?

उस विधाता को पहचानकर मन, वचन और कर्म से उसकी आराधना करने पर ही मनुष्य ज्ञानी बनेगा। वरना वह अज्ञान रूपी अंधकार में भटकता रहेगा।

ईश्वर को छोडने से..?

क्रमहीन बन जाएगा

येप्यन्यदेवता भक्ता भजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।। **-9:23**

हे कुन्तीनन्दन। जो भी भक्त (मनुष्य) श्रद्धापूर्वक अन्य देवताओं का पूजन करते हैं, वे भी मेरा ही पूजन करते हैं, परन्तु अविधिपूर्वक करते हैं।

अकसर हम देखते हैं कि लोग देवताओं की कल्पना में बनाए गए रूपों को और महापुरुषों की मूर्तियों को या चित्रों को भगवान बनाकर उनको पूजते रहते हैं। यानी अव्यक्त रूप वाले ईश्वर को छोडकर भक्ति और श्रद्धा के साथ अन्यों की आराधना करते हैं। कुछ उपासक उठक-बैठक करते हैं तो कुछ लोग घुटनों के बल मंदिरों के गोल चक्कर लगाते रहते हैं। कुछ लोग नारियल, केले इत्यादि नैवेद्य चढाते हैं तो कुछ लोग धन तथा सोने के आभूषण आदि कीमती भेंट समर्पित करते हैं। आखिर ये लोग इन सारी क्रियाओं को इतनी भक्ति तथा निष्ठा के साथ करते क्यों हैं? उनकी सोच यही होती है कि जिस चित्र या प्रतिमा की वे आराधना कर रहे हैं वह ईश्वर के समान है। उनकी आराधना के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने वाले भी होते हैं। वास्तव में वे सब मनुष्य के द्वारा स्वयं बनाई गई हस्तकला के अलावा कुछ भी

नहीं है। उनकी न तो अपनी कोई शक्ति होती है और न ही कोई सामर्थ्य। उनकी आराधना करते हुए लोग यही सोचते हैं कि वे ईश्वर की आराधना कर रहे हैं। परन्तु ऐसी आराधना को अविधिपूर्वक यानी क्रमहीन बताया गया है। अर्थात् ईश्वर को छोडकर अन्यों की आराधना करना किसी भी प्रकार से उचित कार्य नहीं है।

जिसकी आराधना करते हैं उसी को प्राप्त करेंगे

यान्ति देवव्रता देवान् पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोपि माम।। **-9:25**

देवाताओं का पूजन करने वाले शरीर छोडने पर देवतओं को प्राप्त होते हैं। पितरों का पूजन करने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं। भूत प्रेतों का पूजन करने वाले भूत-प्रेतों को प्राप्त होते हैं। मेरा पूजन करने वाले मुझे ही प्राप्त होते हैं।

मृत्यु के बाद मनुष्य के लिए दो प्रकार के स्थान होते हैं और मनुष्य इनमें से जिस में भी जाएगा सदा केलिए वहीं पर रहेगा। उनमें से एक है स्वर्ग जो एकेश्वर की उपासना करने वालों को दिया जाने वाला श्रेष्ठ तथा पवित्र स्थान है। दूसरा है अत्यंत नीच और अपवित्र स्थान नरक जो ईश्वर को छोडकर दूसरों की आराधना करने वालों को दिया जाता है। उपर्युक्त श्लोक में चार प्रकार के अस्तित्वों का विवरण दिया गया है।

1. देवता

इन्होंने न तो कभी अपनी आराधना करने को कहा है और न ही कभी लोगों को गुमराह किया। तो फिर इन देवताओं की आराधना करने वालों का नतीजा क्या होगा? साधारण जनता की आँखों को दिखाई न देने वाले इन देवताओं की कल्पना में अनेक रूपों की मूर्तियाँ बनाई जा रही हैं। इनकी आराधना करने वाले को इन मूर्तियों के साथ ही नरक में डाला जाएगा।

2. पितर

अपने बडों का अनुसरण करने वाले लोग उसी स्थान को प्राप्त करेंगे जिसे उन बडों ने प्राप्त किया था। वे अगर शास्त्र के अनुसार आचरण करके स्वर्ग को प्राप्त करने वाले हो तो ये लोग भी स्वर्ग प्राप्त करेंगे और अगर इस के विपरीत वे (बडे) नरक में जाने वाले हो तो उनका अनुसरण करने वाले ये लोग भी नरक में ही जाएँगे।

3. भूत - प्रेत

सृष्टि के समस्त जीवों को ''भूत'' कहा जाता है। पशु-पक्षी, पेड-पौधे, पत्थर और मनुष्य सब कुछ ''भूत'' कहलाते हैं। कुछ लोग इन भूतों को अलौकिक शक्तिवाले मानकर उनकी आराधना करने लगे हैं। परन्तु इन भूतों का सृजन भी ईश्वर द्वारा ही होता है और इनकी कोई विशेष शक्ति नहीं होती। जो लोग इन भूतों को ईश्वर समान मानकर इनकी आराधना कर रहे हैं उन्हें किसी भी प्रकार का लाभ होने वाला नहीं हैं। वे एकदम असहाय बनकर नरक में ही जाएँगे।

4. मेरा पूजन करने वाले

समस्त सृष्टि का सृजन करने वाले एकेश्वर को ही सारे विश्व का आधारभूत मानकर उसी का पूजन करने वालों को स्वर्ग प्राप्त होगा।

कर्म और फल

किसके अनुग्रह के लिए कर्म किया जाय

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।। **– 3:30**

यहाँ पर कर्तव्य-कर्मों को भगवान के अर्पण करने से मतलब है कि हमें अपने समस्त कर्मों को सिर्फ भगवान की प्रसन्नता को प्राप्त करने के उद्देश्य से ही करना चाहिए। हमारा चाल-चलन उसके अनुग्रह का पात्र बनने योग्य होना चाहिए। सांसारिक लाभों की लालच को त्यागना चाहिए। माता-पिता, बीवी-बच्चे तथा अन्य बन्धुगण के प्रति अनुचित ममता को छोडकर उन्हें भी ईश्वर के मार्ग पर चलाने का प्रयास करना चाहिए। यहाँ तक कि युद्ध जैसे प्रणांतक कर्म को भी सिर्फ उस ईश्वर की प्रसन्नता के लिए ही करना चाहिए।

कर्मों से नहीं बँधता

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।। **– 4:14**

कर्मों के फल में मेरी स्पृहा नहीं है, मुझे कर्म लिप्त नहीं करते। इस प्रकार जो मुझे तत्व से जान लेता है, वह भी कर्मों से नहीं बँधता।

अकसर लोग कहते हैं कि ईश्वर मनुष्य के रूप में अवतरित होकर कर्म करता है। परन्तु वास्तव में उसको न तो मनुष्य का रूप धारण करने की आवश्यकता है और न ही कर्मों की जरूरत। सृष्टि के हर कार्य को वह अपने स्थान से ही संपन्न कर सकता है। उसकी तो सिर्फ आज्ञा ही काफी है। ऐसे महान शक्तिमान ईश्वर के लिए जब कर्म ही नहीं हैं तो कर्मों का फल कहाँ से होगा? सब कुछ उसी का ही तो है ना? उस ईश्वर की सच्चाई को पहचानकर उसकी आज्ञाओं के अनुसार जीवन बिताने वालों को सांसारिक जीवन की या उसके परिणामों की चिंता ही नहीं होती। क्यों कि वे जानते हैं कि हर समस्या को सुलझाकर शान्ति प्रदान करने वाला सिर्फ वह ईश्वर ही है। नरक से बचाकर स्वर्ग यानी मुक्ति तथा मोक्ष दिलाने वाला भी वही है। इस प्रकार ईश्वर के प्रति अटल विश्वास रखने वाला मनुष्य कभी भी कर्मों से बँधता नहीं है।

विद्वान बनेगा

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्नि दग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।। **– 4:19**

जिसके सम्पूर्ण कर्मों के आरंभ संकल्प और कामना से रहित हैं (तथा) जिसके सम्पूर्ण कर्म ज्ञानरूपी अग्नि से जल गए हैं, उसको ज्ञानिजन भी पण्डित (बुद्धिमान) कहते हैं।

त्यक्त्वा कर्मफलसंगम नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोपि नैव किञ्चित्करोति सः।। **– 4:20**

(जो) कर्म और फल की आसक्ति का त्याग करके आश्रय से रहित (और) सदा तृप्त है, वह कर्मों में अच्छी तरह लगा हुआ भी (वास्तव में) कुछ भी नहीं करता।

पाप को प्राप्त नहीं होता

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम।। **-4:21**

जिसका शरीर और अन्तःकरण अच्छी तरह से वशमें किया हुआ है, जिसने सब प्रकार के संग्रह का परित्याग कर दिया है, (ऐसा) इच्छारहित (कर्मयोगी) केवल शरीर-सम्बन्धी करता हुआ (भी) पापको प्राप्त नहीं होता।

पल-पल बदलने वाले इस जीवन में कुछ न कुछ प्राप्त करने के लिए अकसर मनुष्य उत्सुक रहता है। परन्तु अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए अधर्म तथा अन्याय के मार्ग पर न जाकर ''निष्कामकर्म'' करने वाला व्यक्ति ही असली ''ज्ञानी'' कहलाता है। एकेश्वर की उपासना करने वाले ऐसे व्यक्ति का ज्ञान आग के समान होता है। जिन आशाओं तथा इच्छाओं की परलोक में कोई कीमत नहीं होती उन्हें पाने के लिए किए जाने वाले समस्त कर्म इस आग में जल जाते हैं। ऐसे अज्ञानयुक्त कर्मों से दूर रहने वाला ही असली विद्वान होता है। हर विषय में वह शास्त्र का परिशीलन तथा अध्ययन करता है और उसके अनुसार ही जीवन बिताता है। सामने वाले की भलाई करने पर भी वह बदले में उनसे किसी फल की अपेक्षा नहीं करता। उसकी आशा या अपेक्षा, सारी उम्मीदें हमेशा ईश्वर पर ही लगी रहती हैं। उसको न तो संपत्ति की लालच होती है और न ही नाम व शान की अभिलाषा। उसको जो प्राप्त होगा उसीसे वह संतुष्ट हो जाएगा। लाभों की अपेक्षा में ईश्वर को छोडकर दूसरों की शरण में जाने या गिडगिडाने जैसे धर्मविरूद्ध कार्य वह कभी नहीं करता।

अनजाने में वह छोटी-छोटी गलतियाँ कर सकता है परन्तु अक्षम्य पापों की ओर वह कभी नहीं जाता। जो व्यक्ति संपत्ति तथा सुख-सुविधाओं की अभिलाषा में होने वाली लालचों को त्यागता हो, अपने मन तथा इंद्रियों को अधीन में रखकर उन्हें किसी बुरे काम में शामिल न होने देता हो, दूसरों की वस्तु चाहे वह कितनी ही कीमती क्यों न हो उसका हरण न करके अमानत समझता हो- ऐसे मनुष्य की

शारीरिक कमजोरियों के कारण होने वाली छोटी-छोटी गलतियों की गिनती पापों में नहीं होती। तो फिर इस प्रकार के सत्कर्म कैसे मुमकिन होंगे? ऐसा तभी होगा जब मनुष्य शास्त्र में बताए गए इन बातों पर अटल विश्वास बना लें कि - ईश्वर सबकुछ देखता है, हमारे हर काम और बात की वह खबर रखता है, हमारे कर्मों के अनुसार पापों के लिए शाश्वत नरक और पुण्यों के लिए शाश्वत स्वर्ग प्रदान करता है। इस प्रकार के विश्वास से ही मनुष्य को सत्कर्मों की प्रेरणा मिलेगी।

समभाव रखने वाले का कर्मफल

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।। **-4:22**

अपने आप जो कुछ मिल जाय, उसमें सन्तुष्ट रहता है (और) (जो) ईर्ष्या से रहित, द्वन्द्वों से रहित (तथा) सिद्धि और असिद्धि में सम है, (वह) (कर्म) करते हुए भी (उससे) नहीं बँधता।

कभी-कभी अप्रयत्न ही मनुष्य को कुछ लाभ मिलने लगते हैं। संपत्ति तथा सुख -सुविधाओं की प्राप्ति होती है। सहज ही ऐसे समय मनुष्य में गर्व और अहंकार की झलक आने लगती है। परन्तु जो व्यक्ति इस गर्व या अहंकार से दूर रहेगा, सुख-दुख में समभाव दिखाएगा, बन्धुप्रीति और तरफदारी से परहेज करेगा, अपने कर्मों की फलप्राप्ति पर समबुद्धि से रहेगा- ऐसा व्यक्ति अपनी छोटी-छोटी गलतियों के बावजूद नरक में नहीं जाएगा।

सम्पूर्ण कर्मों का अर्पण परब्रह्म को ही करना चाहिए

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगम् त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।। **-5:10**

जो (भक्तियोगी) सम्पूर्ण कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके (और) आसक्ति का त्याग करके कर्म करता है, वह जलसे कमल के पत्ते की तरह पाप से लिप्त नहीं होता।

समस्त कर्मों का अर्पण सिर्फ परब्रह्मा यानी ईश्वर को ही करना चाहिए। आसक्ति को त्यागकर प्रत्येक कर्म को उस ईश्वर की करूणा तथा अनुग्रह का पात्र बनने की इच्छा से ही करना चाहिए। उसकी पसंद ही अपनी पसंद और उसकी अरूचि ही अपनी अरुचि मानकर उसकी आज्ञाओं तथा निषेधों का पालन करना चाहिए। ऐसे मनुष्य को कभी पाप नहीं लगता। जल से कमल के पत्ते की तरह वह पाप से लिप्त नहीं होता।

योगीकर्म

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये।। **-5:11**

कर्मयोगी आसक्ति का त्याग करके केवल (ममतारहित) इन्द्रियोँ, शरीर, मन (और) बुद्धि के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ही कर्म करते हैं।

योग का अर्थ है मिलन। ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हुए उसकी प्रसन्नता के करीब रहने वालों को योगी कहते हैं। तो इनका मिलन किससे हैं? ईश्वर से। अब सवाल यह उठता है कि अव्यक्त रूपी ईश्वर से मिलन कैसे संभव है? ईश्वर ने अपने ग्रंथों में जिन कर्मों की आज्ञा दी है उन्हें करते हुए निषेधित बातों से हर हाल में दूर रहना चाहिए। ईश्वर की आज्ञाओं के अनुसार जीवन बिताते हुए उसके करीब रहने वाले ही ''योगी'' कहलाते हैं। वे सिर्फ भगवान की करुणा तथा अनुग्रह के लिए ही कार्य करते हैं। बिना स्वार्थ या कल्मष के निर्मल चित्त से वे भगवान की हर आज्ञा का पालन करते हैं जहाँ पर सांसारिक लाभों की कोई उम्मीद तक नहीं होती। इसी को ''निष्काम कर्मयोग'' भी कहते हैं। वे अपने कर्म-फल की उम्मीद सिर्फ भगवान से ही करते हैं किसी और से नहीं। सिर्फ उसकी प्रसन्नता के लिए ही कार्य करते हैं। शरीर, मन और बुद्धि के द्वारा ही नहीं बल्कि तरफदारी और अनुराग जैसे गुणों से रहित इन्द्रियों से भी वे भगवान के उपदेशों का पालन करते हैं। भगवान चाहता है कि हम इस प्रकार के योगी बनें।

स्थिर ज्ञान

स्थिरबुद्धि

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। **-2:55**

हे पृथानन्दन। जिस काल में (साधक) मन में आयी सम्पूर्ण कामनाओं का भली भाँति त्याग कर देता है (और) अपने-आप से अपने-आपमें ही सन्तुष्ट रहता है, उस कालमें (वह) स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

मनुष्य का मन अनंत इच्छाओं से भरा हुआ होता है। वह चाहता है कि संसार की सारी सुंदरता तथा खुशियों को प्राप्त करें और सभी सुविधाओं को अनुभव करें। परन्तु स्थिरबुद्धि वाले की सोच इससे भिन्न होती है। तात्कालिक सुख-सुविधाओं की अपेक्षा उसकी नजर हमेशा रहने वाले स्वर्ग की खुशियों पर ही रहती है। वह अपने सृष्टिकर्ता के निर्णयों तथा अधिकारों के प्रति संतुष्ट रहता है। समस्त मानव जाति को ऐसी ही स्थिरबुद्धि प्राप्त करनी चाहिए।

आसक्ति - रहित

यः सर्वत्रानभिस्त्रेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। **-2:57**

सब जगह आसक्ति-रहित हुआ जो मनुष्य उस-उस शुभ-अशुभ को प्राप्त करके न तो प्रसन्न होता है(और) न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

अनावश्यक विषयों में दिलचस्पी, लोगों की हर बात पर मन लगाना, जरूरत से हटकर हर विषय में चिंता करना आदि बाते हमारे व्यवहार में न होनी चहिए। हमेशा यही सोच होनी चाहिए कि भगवान की आज्ञाओं का पालन करते हुए उसके अनुग्रह का पात्र बनें और मोक्ष प्राप्त करें। इस दौरान होने वाले लाभ-नष्ट, सुख-दुःख इत्यादि सभी विषय उस भगवान की ओर से ही होते हैं। इस लिए इनकी चिन्ता न करते हुए हर संदर्भ में भगवान की स्तुति करनी चाहिए। खुशियों में झूम उठना और दुःख के समय शोक में डूबजाना नहीं करना चाहिए। ऐसे ज्ञान को ही स्थिरबुद्धि कहा गया है।

पैगम्बरी

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।। **-3:20**

राजा जनक-जैसे अनेक महापुरुष भी कर्म (कर्मयोग) के द्वारा ही परमसिद्धि को प्राप्त हुए थे। (इस लिए) लोकसंग्रह को देखते हुए भी (तू) (निष्कामभाव से कर्म) करने के ही योग्य है अर्थात् अवश्य करना चाहिए।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। **-3:21**

श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो आचरण करता है, दूसरे मनुष्य वैसा-वैसा ही (आचरण करते हैं।) वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, दूसरे मनुष्य उसी के अनुसार आचरण करते हैं।

राजा जनक जैसे महापुरुष अर्थात् श्रीराम, विश्वामित्र, द्रोण, भीष्म, दशरथ जैसे कई महापुरुष निष्कामकर्मयोग के द्वारा ही परमसिद्धि को प्राप्त हुए थे। लालच या किसी अन्य फल की अपेक्षा किए बिना सिर्फ ईश्वर की करुणा तथा अनुग्रह के पात्र बनने के उद्देश्य से जीवन बिताने को ही निष्कामकर्मयोग कहते हैं। आम जनता को सन्मार्ग पर चलाने तथा उनके सामने एक आदर्श प्रस्तुत करने के लिए सिर्फ उन कर्मों का ही आचरण करना चाहिए जिन्हें ईश्वर पसंद करता है। जिन कामों से ईश्वर नाराज होता हो उनसे हर हाल में दूर रहना चाहिए। लोग महापुरुषों के आचरण तथा प्रमाणों का अनुसरण करते हैं। इस लिए जिस प्रकार महापुरुषों ने शास्त्रों का अनुसरण किया था उसी प्रकार सभी को करना चाहिए।

महापुरुष अगर कर्म न करें तो..?

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः।। **-3:24**

यदि मैं कर्म न करुँ (तो) ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायँ और मैं वर्ण संकरता को करनेवाला होऊँ (तथा) इस समस्त प्रजा को नष्ट करने वाला बनूँ।

सामान्य लोग अकसर महापुरुषों का अनुसरण करते हैं। इस लिए अगर वे महापुरुष ईश्वर की आज्ञा के अनुसार कर्मों का आचरण न करेंगे तो सारा समाज बिगड जाएगा और समाज में फैलने वाली बुराइयों के लिए वे कारण बन जाएँगे। यहाँ पर परमात्मा द्वारा भी यही बात मसझायी गयी है। समाज में धर्म का नाश और अघर्म की वृद्धि होते समय प्रत्येक पैगम्बर या ऋषि के पास समाज को सुधारने वाला संदेश लेकर आना उनका कर्त्तव्य है। इस कर्म का आचरण वे करते रहेंगे तो समाज में बुराइयाँ दूर होकर शान्ति की स्थापना होगी। अगर परमात्मा और महापुरुष अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन न करेंगे तो लोगों को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले बन जाएँगे। इसी विषयको उपर्युक्त श्लोक में समझाया गया है।

ज्ञानियों के कर्म

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्त थासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्।। **-3:25**

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन। कर्मों में आसक्त हुए अज्ञानीजन जिस प्रकार (कर्म) करते हैं, आसक्तिरहित तत्त्वज्ञ महापुरुष (भी) लोकसंग्रह करना चाहता हुआ उसी प्रकार (कर्म) करे।

उपर्युक्त श्लोक में ज्ञानी और अज्ञानियों के बीच का अंतर बताया गया है। अज्ञानी लोग सांसारिक लाभों के उद्देश्य से ही कार्य करते हैं। अपने स्वार्थ के लिए और अपने सगे-संबंधियों के लाभ के लिए दूसरों को अन्याय तक करने के लिए वे तैयार हो जाते हैं। परन्तु ज्ञानी लोग अपने वैयक्तिक लाभों की आशा नहीं रखते। ईश्वर द्वारा प्रसादित चीजों से संतुष्ट रहते हैं और हर समय शान्ति, परिवार की संरक्षा, सामाजिक अभिवृद्धि तथा सुधार के बारे में विचार करते रहते हैं। ज्ञानी बनने के लिए हमारा अंतिम लक्ष्य मानव कल्याण ही होना चाहिए।

दूसरों के लिए आदर्श बनना चाहिए

न बुद्धि भेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।। **-3:26**

सावधान तत्त्वज्ञ महापुरुष कर्मों में आसक्तिवाले अज्ञानी मनुष्यों की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न न करे (प्रत्युत स्वयं) समस्त कर्मों को अच्छी तरह से करता हुआ (उनसे भी वैसे ही) करवाये।

ज्ञानी मनुष्य को चाहिए कि वह हमेशा एकाग्रचित्त बनकर, निष्कल्मष हृदय से ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करें। निष्कामकर्मयोगी बनकर सांसारिक लाभों की आशा न करते हुए ईश्वर के प्रति अटल विश्वास बनाए रखना चाहिए और उसके द्वारा दिखाए गए मार्ग पर स्थिर रहना चाहिए। जो लोग इसके विपरीत चलते हैं उन्हें न तो शत्रु समझना चाहिए और न ही अपने से हीन समझकर नीचभाव से देखना चाहिए। उनके साथ स्नेह से व्यवहार करें और अपने अंदर के सब्र, सहयोग, क्षमा, दया इत्यादि सद्गुणों को उनके सामने प्रस्तुत करते हुए उन्हें भी सन्मार्ग पर चलाने का प्रयास करें।

ईर्ष्यारहित

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तो नसूयन्तो मुच्यन्ते तेपि कर्मभिः।। **-3:31**

जो मनुष्य दोष-दृष्टि से रहित होकर श्रद्धापूर्वक मेरे इस मतका सदा अनुसरण करते हैं, वे भी कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

ईश्वर के मत यानी अभिप्रायों से मतलब है कि उसकी शिक्षाओं का यथातथ्य अनुसरण करें। ईर्ष्या और द्वेषों से दूर रहें। वैसे, ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करने वाले मनुष्य इस प्रकार की बुराइयों से दूर ही रहते हैं। क्यों कि उनका विश्वास होता है कि ईश्वर हर बात की खबर रखता है, यहाँ तक कि दिलों की गहराई में रहने वाले राज भी वह जानता है। इस लिए वे ईर्ष्या नहीं करते। ऐसे लोग (दुष्कर्म) बन्धन अर्थात् बुरे कर्मों के लिए मिलने वाले नरक से मुक्त होते हैं।

तिरस्कार और परिणाम

धर्म की शिक्षाओं को द्वेष करने वाले

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति में मतम्।
सर्वज्ञान विमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः।। **-3:32**

परन्तु जो मनुष्य मेरे इस मतमें दोष-दृष्टि करते हुए (इसका) अनुष्ठान नहीं करते, उन सम्पूर्ण ज्ञानों में मोहित (और) अविवेकी मनुष्यों को नष्ट हुए (ही) समझो अर्थात् उनका पतन ही होता है।

ईश्वर की आज्ञाओं में दोष-दृष्टि करते हुए उनका अनुसरण न करने वाले और अपनी इच्छानुसार जीवन बिताने वालों को बुद्धिहीन, अज्ञानी या अविवेकी बताया गया है। ऐसे ही लोगों को बिगडे हुए बताया गया है।

मोक्ष का दुश्मन

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।। **-3:37**

रजोगुण से उत्पन्न यह काम अर्थात् कामना (ही पाप का कारण है)। यह (काम ही) क्रोध (में परिणत होता) है। यह बहुत खानेवाला (और) महापापी है। इस विषय में (तू) इस को (ही) वैरी जान।

धनवान या बलवान बनने की इच्छा बहुत बुरी होती है। यही इच्छा अनेक दुष्कार्यों और दुराचारों के लिए कारण बन जाती है। अधिकार और संपत्ति प्राप्त करने की इच्छा कभी खत्म नहीं होती। इसकी पूर्ति के लिए मनुष्य किसी भी हद तक जा सकता है। किसी की हत्या करने या परिवारों को नाश करने से भी वह पीछे नहीं हठता। अनेक घोर पापों के लिए यह इच्छा एक कारण बन जाती है। इस लिए ऐसी इच्छाओं को मोक्ष-मार्ग के लिए दुश्मन यानी स्वर्ग के लिए रुकावट बताते हुए उपर्युक्त श्लोक में एक चेतावनी दी गई है।

ढकाहुआ आत्मज्ञान

धूमेनाव्रियते वह्नियथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्।। **-3:38**

जैसे धुँए से अग्नि और मैल से दर्पण ढका जाता है (तथा) जैसे जेरसे गर्भ ढका रहता है, ऐसे ही उस कामना के द्वारा यह (ज्ञान अर्थात् विवेक) ढका हुआ है।

धुँआ जब फैला हुआ रहता है तो आग दिखाई नहीं देता परन्तु वह अन्दर-अन्दर रहता है। मैल लगने पर दर्पण होता तो है पर दिखाई नहीं देता। गर्भ में रहने वाला शिशु भी जेर से ढका रहने के कारण दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार सांसारिक जीवन के प्रति होने वाली इच्छाएँ हमारी आत्मा के ज्ञान को ढक देती हैं। ज्ञान का अर्थ है ईश्वर को सही प्रकार से पहचानना - जैसे कि वह एक है, अव्यक्त है, जन्म या मृत्यु को प्राप्त न करने वाला है, सब कुछ देखता है, सुनता है और हमारे हर कार्य के लिए एक दिन हिसाब लेने वाला है। जब भी मनुष्य में सांसारिक विषयों को प्राप्त करने की कामना बढने लगती है तब उसका ईश्वर संबंधी आत्मज्ञान ढक जाता है। आत्मज्ञान का नाश तो नहीं होता परन्तु दिल की गहराई में, किसी कोने में वह दबा हुआ रह जाता है। ये कामनाएँ उसको ढक देती हैं। इस लिए हमें इन कामनाओं को कम करते हुए निष्कामकर्मयोग करना चाहिए ताकि हमारा ढका हुआ ज्ञान बाहर निकल आए।

मोक्ष

ईश्वर की आज्ञा ही मोक्ष-मार्ग है

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।। **-2:37**

अगर (युद्ध में तू) मारा जायगा (तो) (तुझे) स्वर्ग की प्राप्ति होगी (और) अगर (युद्धमें तू) जीत जायगा (तो) पृथ्वी का राज्य भोगेगा। अतः हे कुन्तीनन्दन। (तू) युद्ध के लिए निश्चय करके खडा हो जा।

सारे कर्मों में अत्यंत कठिनता तथा साहस से भरा हुआ कार्य ''युद्ध'' है। कुरुक्षेत्र युद्ध कोई साधारण युद्ध नहीं बल्कि धर्म और अधर्म के बीच हुआ एक ''धर्म युद्ध'' है। तो इस प्रकार के श्रेष्ठ कर्म का आचरण करते हुए मृत्यु की गोद में जाने वाले का परिणाम क्या हो सकता है? स्वर्ग यानी मोक्ष ही ना! आखिर इस मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही तो लोग भले कार्य करते हैं। तो क्या हमारे कर्मों से हमें मोक्ष मिल जाएगा? मोक्ष तो तभी मिलेगा जब हम ईश्वर द्वारा भेजे गए शास्त्रों का अनुसरण करेंगे, उसकी आज्ञाओं का पालन करेंगे। कार्य चाहे हमारे लिए मुश्किल हो या आसान, शास्त्र के अनुसार ही उसकी पूर्ति होनी चाहिए। तभी हम मोक्ष के हकदार बनेंगे।

टिप्पणी : धर्मयुद्ध के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए अहमद अली साहब की ***(MY FINDINGS FROM GITA CONFORM WITH QURAAN)*** किताब पढिए।

आसक्तिरहित कर्म ही मोक्षमार्ग है

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म तरमाप्नोति पुरुषः।। **-3:19**

इस लिए (तू) निरन्तर आसक्तिरहित (होकर) कर्त्तव्य कर्म का भलीभाँति आचरण कर, क्यों कि आसक्ति रहित (होकर) कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

सांसारिक जीवन को बहुत ही आकर्षक बनाया गया है। आयु घटते हुए बुढापा आने पर भी, मृत्यु के करीब होने पर भी यहाँ पर उम्मीदें और कामनाएँ खत्म नहीं होती। जो मनुष्य इस जीवन को अनित्य, तात्कालिक और सुखरहित मानता हो और परलोक की सुविधाओं को ही शाश्वत समझता हो उसको यहाँ की खुशियों के लिए प्रयास नहीं करना चाहिए। यहाँ की संपत्ति तथा संबंधों को प्रधानता नहीं दी जानी चाहिए। उन सब चीजों को कमल पर पानी की बूँदों की तरह ही रखना चाहिए। संपत्ति और संबंधों को सिर्फ जीवन का एक हिस्सा समझे न कि संपूर्ण जीवन या जीवन-लक्ष्य। जो व्यक्ति इस जीवन से संबंधित आशा, लालच तथा ममताओं से दूर रहेगा वही मोक्ष का पात्र बनेगा।

भगवान का आश्रय ही मोक्षमार्ग है

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।। **-18:56**

मेरा आश्रय लेने वाला भक्त सदा सब कर्म करता हुआ भी मेरी कृपा से शाश्वत अविनाशी पद को प्राप्त हो जाता है।

हमारा हर कार्य ईश्वर के नाम से ही होना चाहिए। जैसे- खाना-पीना, पढना-लिखना, नौकरी तथा कारोबार इत्यादि व्यवहार, माता-पिता, बीवी-बच्चे, बन्धुगण तथा दोस्तों से संवाद और व्यवहार- सभी कार्य ईश्वर की आज्ञा के अनुसार ही होना चाहिए। ऐसा करने वालों पर ही उसका अनुग्रह हमेशा रहेगा। जिस प्रकार एक पिता

अपनी हर बात को मानने वाले पुत्र से प्रसन्न रहता है उसी प्रकार भगवान भी अपनी हर आज्ञा का पालन करने वाले मनुष्य से प्रसन्न होता है। वास्तव में भगवान की प्रसन्नता कुछ अधिक ही होती है क्यों कि वह अत्यंत करुणा तथा दया दिखाने वाला होता है और उपर्युक्त श्लोक में स्वयं उसने ''मेरी कृपा से...'' कहते हुए इस विषय को प्रकट किया है। अकसर मनुष्य में यह सोचकर घमण्ड आने लगता है कि अपने कर्मों से वह मोक्ष को प्राप्त कर लेगा। इस लिए ईश्वर कहता है कि उस की आज्ञाओं के अनुसार जीवन बिताने पर भी अंत में उसकी कृपा तथा अनुग्रह के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होगी जो शाश्वत और अविनाशी पद यानी स्वर्ग है।

उसी को परमगति मानना ही मोक्षमार्ग है

तद्बुद्धय स्तदात्मानःस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्य पुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः।। **-5:17**

जिनका मन तदाकार हो रहा है, जिनकी बुद्धि तदाकार हो रही है, जिनकी स्थिति परमात्मतत्व में है, (ऐसे) परमात्मापरायण साधक ज्ञान के द्वारा पापरहित होकर अपुनरावृत्ति (परमगति) को प्राप्त होते हैं।

बुद्धि और मन-दोनों को ईश्वर पर ही लगाना चाहिए। अर्थात् मनुष्य को हमेशा अपनी सोच तथा कल्पनाओं में ईश्वर को ध्यान में रखते हुए उसकी आज्ञाओं का पालन करना चाहिए और मना की गई बातों से दूर रहना चाहिए। इसी को निष्ठा कहते हैं। बुराइयों से दूर रहना और समाज की भलाई के लिए उपयोगी कामों में लगे रहना इत्यादि सभी कार्य ईश्वर की इच्छा के अनुकूल ही होना चाहिए। सांसारिक जीवन में सुख और शान्ति तथा परलोक में मुक्ति या मोक्ष प्रदान करने की शक्ति सिर्फ ईश्वर को ही है। इस लिए हमें उस ईश्वर को ही परमगति मानना चाहिए। इस प्रकार का ज्ञान रखने वाले मनुष्य पापरहित होकर शाश्वत मोक्षपद यानी वैकुंठ को प्राप्त कर सकते हैं।

शास्त्र की शिक्षा

निर्णय - स्वेच्छा

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।। **-18:63**

यह गुह्य से भी गुह्यतर (शरणागतिरूप) ज्ञान मैं ने तुझे कह दिया। (अब तू) इस पर अच्छी तरह से विचार करके जैसा चाहता है, वैसा कर।

सर्वगुह्यतमं भूयः श्रृणु मे परमं वचः।
इष्टोसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।। **-18:64**

सबसे अत्यंत गोपनीय सर्वोत्कृष्ट वचन (तू) फिर मुझसे सुन। तू मेरा अत्यंत प्रिय मित्र है, इस लिए यह (विशेष) हित की बात (मैं) तुझे कहूँगा।

यहाँ पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि यह ज्ञान अत्यंत गोपनीय है। मनुष्य को भगवान ने भेद करने की शक्ति और चयन करने की स्वेच्छा दी है। भेद करने से मतलब है अच्छे-बुरे तथा लाभ और नष्टों के बीच अंतर को पहचानना। शास्त्र में ईश्वर के अस्तित्व के बारे में, उसकी आज्ञाओं के बारे में और उनका अनुसरण करने से होने वाले लाभ तथा विरोध करने से होने वाले नष्टों के बारे में बताया

गया है। ये सारी बातें अत्यंत गोपनीय होने पर भी मानवजाति की भलाई के लिए प्रकट की गईं हैं। इन बातों का अध्ययन तथा परिशीलन करने के बाद अपनी इच्छा के अनुसार निर्णय लेने की स्वेच्छा भी दी गयी है। ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करने से इहलोक तथा परलोक-दोनों जगह लाभ ही होगा और विरोध करने से दोनों ओर से घाटा ही उठाना पडेगा। इस लिए ईश्वर द्वारा दी गई इस श्रेष्ठ शिक्षा का हमें पालन करना चाहिए जो अत्यंत गोपनीय होने पर भी सिर्फ मानव कल्याण के लिए प्रकट की गई है।

किससे नहीं कहना चाहिए

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योभ्यसूयति।। **-18:67**

यह सर्वगुह्यतम वचन तुझे अतपस्वी को नहीं कहना चाहिए, अभक्त को कभी नहीं कहना चाहिए तथा जो सुनना नहीं चाहता (उसको) नहीं कहना चाहिए और जो मुझमें दोषदृष्टि करता है (उसको भी) नहीं कहना चाहिए।

अत्यंत श्रेष्ठ इस शास्त्र का आचरण करने वालों में दीक्षा, निष्ठा और निरंतर कृषि होने चाहिए। ईश्वर हमारे हर कार्य को देखता है और उन्हें लिपिबद्ध करता है। इस लिए हमें उससे डरते हुए, उसकी हर आज्ञा का पालन करना चाहिए। इसी को भक्ति कहते हैं। इसके विपरीत चलने वालों को, ईश्वर संबंधी कोई भी बात सुनने पर मुँह फेर लेने वालों को और ईश्वर का दूषण करने वालों को शास्त्र का बोध नहीं करना चाहिए।

शास्त्र का प्रचार करने से लाभ

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।। **-18:68**

मुझमें पराभक्ति करके जो इस परम गोपनीय संवाद (गीताग्रंथ) को मेरे भक्तों में कहेगा, (वह) मुझे ही प्राप्त होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।। **-18:69**

उसके समान मेरा अत्यंत प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई भी नहीं है और इस भूमण्डल पर उसके समान मेरा दूसरा कोई प्रियतर होगा भी नहीं।

भगवान ने अति रहस्य इस गीताशास्त्र के संदेश को हम जैसे साधारण जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया है। तो फिर उसके प्रति अब हमारी जिम्मेदारी क्या होगी? उस शास्त्र में बताए गए संदेश को समझकर उस पर विश्वास करने के साथ-साथ उसका अनुसरण करते हुए दूसरों तक पहुँचाने का प्रयास भी करना चाहिए। इस प्रकार शास्त्र के संदेश का प्रचार करने वाला ही उत्तम भक्ति रखनेवाला कहलाता है। और इतना ही नहीं बल्कि ईश्वर के बारे में या उसके आदेशों के बारे में या स्वर्ग तथा नरक के बारे में किसी भी प्रकार के शक या शंका के बिना विश्वास रखने वाला ही उस ईश्वर के करीब जा सकता है। ऐसा मनुष्य ही ईश्वर के लिए प्रिय या पसंदीदा होता है। उससे बढकर प्रियतर व्यक्ति इस संसार में और कोई नहीं होता। इस लिए ईश्वर के संदेश को समझकर उसका आचरण करते हुए प्रचार करना ही अत्यंत प्रधान कर्त्तव्य है। शास्त्र पर यकीन करने वाले हर व्यक्ति को इस कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

शास्त्र को जानने से लाभ

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।। **-15:20**

हे निष्पाप अर्जुन। इस प्रकार यह अत्यन्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है। हे भरतवंशी अर्जुन। इसको जानकर (मनुष्य) ज्ञानवान् और कृतकृत्य हो जाता है।

शास्त्र को जानने वाला ज्ञानी बनता है। यहाँ पर ज्ञानी से मतलब सिर्फ धार्मिक बातों में ही नहीं बल्कि समाज के सभी विषयों की भली-भाँति जानकारी रखते हुए एक सच्चे समाज-सुधारक तथा हितैषी बने रहना है। ऐसा मनुष्य अपने हर कार्य में कृतकृत्य बन सकता है।

श्रद्धावाननसूयश्च श्रृणुयादपि यो नरः।
सोपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम।। **-18:71**

श्रद्धावान और दोषदृष्टि से रहित जो मनुष्य (इस गीताग्रन्थको) सुन भी लेगा, वह भी शरीर छूटने पर पुण्यकारियों के शुभलोकों को प्राप्त हो जायगा।

अकसर मनुष्य सांसारिक लाभों के प्रति श्रद्धा और दिलचस्पी बनाए रखते हैं। परन्तु वास्तव में सांसारिक जीवन अनित्य और सुखरहित है। यहाँ मिलने वाले लाभों के साथ-साथ ईर्ष्या भी जुडी हुई होती है। हमारी तरक्की दूसरों से सहन नहीं होती और न ही हम दूसरों की उन्नति की कामना कर सकते हैं। अनित्य जीवन में मिलने वाली खुशियाँ भी तो अनित्य ही होंगी ना? शाश्वत रूप में सदा के लिए मिलने वाली सुख-सुविधाएँ ही असली खुशियाँ हैं।

पुण्य कार्यों का आचरण करने वाले आखिरकार स्वर्ग यानी वैकुंठ मे ही तो पहुँचकर सदा रहने वाले सुखों का अनुभव करेंगे। अपने पापों से विमुक्त होने के लिए हमें श्रद्धावान तथा दोषदृष्टि से रहित होकर गीताशास्त्र को सुनना चाहिए और उसके अनुसार आचरण करना चाहिए।

हमारा कर्त्तव्य

प्रतिज्ञा करनी चाहिए

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। **-18:73**

हे अच्युत आपकी कृपा से (मेरा) मोह नष्ट हो गया है (और) मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। (मैं) सन्देहरहित होकर स्थित हूँ। (अब मैं) आपकी आज्ञा का पालन करुँगा।

यहाँ पर एक विषय स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण द्वारा बोधित इस गीताशास्त्र का परिशीलन करते हुए अध्ययन करने वालों को ज्ञान की प्राप्ति होगी। आध्यात्मिकता से संबंधित हर शंका तथा संदेह की निवृत्ति हो जाएगी। जिस प्रकार भरतवंशी अर्जुन ने ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करने की कसम खाई है उसी प्रकार हम सब भारतीयों को भी प्रतिज्ञा करनी चाहिए और उसके अनुसार जीवन को आगे बढाना चाहिए।

जब इस प्रकार का आचरण किया जाएगा तब प्रत्येक व्यक्ति में शान्ति होगी और सभी परिवारों में खुशियों का वातावरण बना रहेगा। तभी हमारा समाज शान्ति, एकता और नैतिकता से भरपूर होकर संसार के लिए एक आदर्श बन सकेगा। इस लिए हर हिन्दुस्तानी को चाहिए कि वह गीताशास्त्र के अनुसार आचरण करने का संकल्प करें जिसमें उसकी अपनी उन्नति के साथ-साथ देश का विकास भी निहित है।

श्री कृष्ण के जीवन में से किस अंश को आदर्श बनाएँ?

इस विषय से सम्बन्धित आन्ध्रप्रदेश के काकिनाडा में आयोजित एक सभा में उत्पन्न एक प्रश्न और उसके उत्तर को यहाँ पर प्रस्तावित किया जा रहा है।

प्रश्नः श्रीराम के जीवन में अनेक सद्‌गुण भरे हुए हैं। इस लिए उनको आदर्श माना जा सकता है। परन्तु गीताशास्त्र का बोध कराने वाले श्रीकृष्ण के जीवन में से किस अंश को हम आदर्श बनाएँ? उन पर तो कई निन्दाएँ की गई हैं ना?

इतिहास के आध्यात्मिक विषयों में इस प्रकार की कई गलत धारणाएँ आ गई हैं। इसी लिए ''वास्तव धर्म'' अदृश्य होता गया। कुछ धार्मिक पंडितों ने अपने स्वार्थ के लिए धर्म में अनेक नए और नकली बातों को जोड दिया और उस धर्म के नाम पर लोगों को अनेक वर्गों में विभाजित कर दिया। इस प्रकार असली धर्म तो भ्रान्तियों के पर्दों के पीछे ही दबा रह गया। इसका एक प्रमुख कारण है कि लोगों ने धर्म से सम्बन्धित मूल विश्वासों और अस्तित्वों के बारे में विचार करना तथा पहचानना ही छोड दिया है। उनमें से एक प्रमुख अस्तित्व है श्रीकृष्ण परमात्मा का। उनको ''जगद्‌गुरु'' और ''देवताओं का देव'' (देवदेवाः) भी कहा गया है जिसका अर्थ है देवगणों का यानी देवताओं के समूह का नायक। उनके द्वारा लाया गया गीताशास्त्र अति पवित्र संदेश है। इसके द्वारा ही समाज की समस्त बुराइयों को और वर्गों के बीच विभेदों को दूर करके नैतिकता और एकता की स्थापना की जा सकती है। इतने महान संदेश को लाने वाले श्रीकृष्ण परमात्मा में मक्खन की चोरी, स्त्रियों का व्यामोह, साडियाँ उठा ले जाना, झूठ बोलकर धोका देना इत्यादि अनैतिक गुण कैसे हो सकते हैं? जरा सा सोचने से स्पष्ट हो जाता है कि गीताशास्त्र का बोध कराने वाले श्रीकृष्ण परमात्मा में इस प्रकार की कमजोरियाँ नहीं हो सकतीं। तो अब सवाल यह उठता है कि क्या महाभारत में ''श्रीकृष्ण'' नाम से एक और अस्तित्व भी था? निम्न श्लोकों का परिशीलन करने से इसका जवाब ''हाँ'' ही मिलता है।

आपकी इस महिमा को न जानते हुए ''मेरे सखा है'' ऐसा मानकर मैं ने प्रमाद से अथवा प्रेम से भी हठपूर्वक (बिना सोचे - समझे) ''हे कृष्णा। हे यादव। हे सखे।'' इस प्रकार जो कुछ कहा है, और हे अच्युत। हँसी-दिल्लगी में चलते फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते समय अकेले अथवा उन (सखाओं, कुटुम्बियों आदि) के

सामने (मेरे द्वारा आपका) जो कुछ तिरस्कार (अपमान) किया गया है, हे अप्रमेयस्वरुप! वह सब आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ अर्थात् आपसे क्षमा माँगता हूँ। **-11:41-42**

इन श्लोकों को समझने के लिए पहले हमें देवताओं के अस्तित्व को पहचानना चाहिए। मनुष्य की तरह उनको बचपन, जवानी, बुढापा और उसके बाद मृत्यु इत्यादि दशाएँ नहीं होती। क्यों कि उनका न तो जन्म होता है और न ही मृत्यु। वे तो ईश्वर की आज्ञा से हर जगह जा सकते हैं और हर रूप का धारण कर सकते है। उनकी उत्पत्ति और विनाश ईश्वर की आज्ञा से ही होती हैं।

इन बातों को ध्यान में रखते हए हम उपर्युक्त श्लोकों का परिशीलन करें तो निम्न विषय स्पष्ट होते हैं।

1. अर्जुन के बहुत करीब रहनेवाला एक मित्र है जिसको ''कृष्ण'' नाम से बुलाया जाता था।
2. दूसरा अस्तित्व श्री परमात्मा कहलाने वाले एक देवता का है जिन्होंने अर्जुन को गीताशास्त्र जैसे महान ग्रंथ का बोध करके अपना विश्वरूप दिखाया था।

ईश्वर की आज्ञा के अनुसार किसी भी रूप का धारण कर सकने वाले श्री परमात्मा ने अर्जुन के बचपन के दोस्त कृष्ण का रूप धारण करके उन्हें गीताशास्त्र का बोध किया था। अर्जुन ने उस परमात्मा को ही अपने प्रियमित्र श्रीकृष्ण समझा था जिस प्रकार आज हम जैसे सामान्य लोग सोच रहे हैं। परन्तु परमात्मा का विश्वरूप देखने के बाद अर्जुन समझ गए थे कि उनके बचपन के दोस्त श्रीकृष्ण अलग हैं और गीताशास्त्र का बोध कराने वाले श्री परमात्मा अलग हैं। इस बात को समझने के बाद उन्होंने परमात्मा से माफी भी माँगी थी।

इस लिए हमें भी इस सच्चाई को पहचानकर जागरुक रहना चाहिए कि गीताशास्त्र जैसे पवित्र संदेश को लाने वाले श्रीकृष्ण परमात्मा के अस्तित्व पर कलंक न लगे। गीताशास्त्र के संदेश को आम बनाना ही उनका आदर्श है जिसका हम पालन करें।

जय हिन्द